योग सिद्धान्तो और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगायोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 30 नवम्बर, 1997 अंक 8

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, संवाई (आगरा) - 283 202

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
श्री चन्द्रशेखर 'दिव्य'

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

श्री गोविन्द सोनी

ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा

वार्षिक शुल्क	65/- रु०
एक प्रति	6/- रु०
द्विवार्षिक शुल्क	120/- रु०
आजीवन शुल्क	651/- रु०

इस अंक के लेख

- पितासि लोकस्य चराचरस्य 1
- अमृत कण 2
- योगी का जात्यन्तर परिणाम (विशेष लेख) 3
  -योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज
- योग साधना एवं सिद्धियाँ (सम्पादकीय) 6
- आधि-व्याधि के विघ्नों से निवृत्ति के उपाय 10
  -प्रोफेसर आचार्य चन्द्रहास शर्मा
- मामेकं शरणं व्रज 17
  -पं० राजेन्द्र प्रसाद पाठक
- श्री सिद्धगुफा की महिमा (कविता) 21
  -ब्र० ब्रजमोहन वाशिष्ठ
- तत्त्वज्ञयी योगीराज श्री हरिहरानन्द जी महाराज -बलिराम तिवारी 23
- श्री गुरुदेव की कृपापात्रा श्रीमती सुगालादेवी 25
  -राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)
- योग धर्म के आदिगुरु योगेश्वर श्रीकृष्ण 34
  -ब्र० ओमप्रकाश
- विवेकानन्द ने कहा था 40

'SIDDHAYOG' NOVEMEER 1997

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 30
अंक 8

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

नवम्बर
1997

पितासि लोकस्य चराचरस्य

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्र्येऽप्यप्रतिम प्रभाव।।

अर्थात्

हे जगन्निवास ! आप इस चराचर जगत के पिता हैं। आप गुरुओं के भी गुरु एवं पूज्य हैं। अप्रतिम प्रभाव वाले तीनों लोगों में आप के समान कोई नही है। फिर आप से बढ़कर और कोई कैसे हो सकता है।

अमृत कण

यथा प्रकाशयत्येक: कृत्स्नं लोकमिमं रवि:।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।

अर्थात्

हे भरत वंशी अर्जुन ! जिस प्रकार से एक ही सूर्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार से एक ही आत्मा सम्पूर्ण वर्ग को प्रकाशित करता है।

* * * *

क्षेत्र क्षेत्र ज्ञयोरेव मन्तरं ज्ञान चक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।।

अर्थात्

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को एवं भूत, प्रकृति एवं मोक्ष के स्वरूप को जो अपने ज्ञान चक्षु के द्वारा जान लेता है, वह परम पद को प्राप्त हो जाता है।

* * * *

विशेष लेख

योगी का जात्यन्तर परिणाम

योगीराज अनन्तश्री चन्दमोहन जी महाराज

जात्यान्तर परिणाम का अर्थ है एक जाति से दूसरी जाति मे परिवर्तित होना। आम लोगो के सामने यह प्रश्न सदा सर्वदा बना रहता है कि एक योगी अपने आपको एक जाति से दूसरी जाति मे कैसे परिवर्तित कर सकता है। मनुष्य, मनुष्य ही रहेगा, गध ा, घोड़ा, खच्चर आदि नही बन सकता। यह बात प्रकृति के नियम के प्रतिकूल मालूम पड़ती है। किन्तु ऐसी बात नही है। प्रकृति के खजाने मे सभी तत्व सदा सर्वदा परिपूरित रहते है। जैसा कि इसकी पुष्टि योग योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी गीता मे की है।

ना सतो विद्यते भावो,
ना भावो विद्यते सतः
उभयोरपि दृष्टवोन्ते स्त्वन योस्तत्व दर्शिभि।

अर्थात्–जो वस्तु नही है वह कही से आयेगी नही और जो है वह कही जायेगी नही। केवल मात्र परिणामान्तर होता रहता है। मनुष्य के शरीर मे रोज नये–नये परिवर्तन होते रहते है। आज जो परमाणु शरीर मे है कल वह वह नही रहेंगे।

जो कल थे वह आज नही हैं इस प्रकार से परिणामान्तर नित्य होता रहता है। जिस समय किसी बालक का जन्म होता है उस समय उसकी आकृति बहुत छोटी होती है। शनैः शनैः वह जैसे–जैसे पौष्टिक आहार पाता रहता है, त्यो–त्यो शरीर बढ़ता रहता है।

थोड़े दिन के बाद ऐसा समय आ जाता है कि उसका शरीर पहचाना भी नही जा -सकता है। जब वह कैसा था और कहाँ चला गया ? केवल मात्र यह नैत्यिक परिणाम का ही फल हुआ करता है।

इसी प्रकार से मनुष्य का जात्यन्तर परिणाम भी होता रहता है। सूक्ष्म शरीर मे जो परिणाम होता है, उसके पूरे लक्षण शरीर स्थूल शरीर मे हो जाया करते है नीति शास्त्र का वचन है–

आकारैरगतैर्गत्या,
चैष्टया भाषणेन च।
नेत्र वक्त्र विकारैश्च,
ज्ञायतेऽन्तर्गतं मनः।।

अर्थात्–आकार के इशारो से चलने फिरने की गति से हरकत और बोलने से भीतर के मन भी पहचान होती है। किसी के मन मे काम वासना आदि भावो का उद्गम है या क्रोधादि का उद्वेग है, तो उसके मन की आकृति तदानुरूप बदल जाती है। अर्थात् उसके अन्तःकरण मे जो परिणाम उदय होता है वही उसकी वाह्य आकृति मे भी दिखलाई दे जाया करता है। इसी प्रकार से जात्यन्तर

परिणाम भी मनुष्य के स्वकृत कर्म विपाकानुसार मनुष्य का होता रहता है यह हो सकता है कि इस समय मनुष्य है और कालान्तर में इस आयु के भोग लेने के बाद वह अपने अच्छे या बुरे कर्म विपाकानुसार किसी अन्य जाति के अंदर जन्म ले। उसकी मनुष्य जाति छूट कर किसी पशुपक्षी आदि की जातियों में वह परिणित हो जाये यह जात्यन्तर परिणाम आदि महासिद्ध ईश्वर के संकल्पानुसार हुआ। किन्तु योगी की क्या सामर्थ्य हुआ करता है, इसको योग दर्शन के विभूति पाद को पढ़ने वाले साधक जानते ही हैं। योगी की कर्तुमकर्तुमन्यथा कुर्तम् की उक्ति सब प्रकार परिपूर्ण होती ही है। वह चाहे तो अपने शरीर को एक जाति से दूसरी जाति में परिणित कर सकता है, क्योंकि प्रकृति पर उसकी पूर्णरूपेण हुकूमत रहती है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण लोक और वेद में सुनने में आते है योग दर्शन में भगवान पतंजलि देव जात्यन्तर परिणाम के विषय में निर्देश करते हैं :-

'जात्यन्तर परिणामः प्रकृत्यापूरात'

अर्थात्-जात्यन्तर परिणाम में पूर्व जन्म कर्म निमित्त को पाकर इन्द्रियाँ और अवयव प्रवेश कर जाते है, एक परिणाम दूसरे परिणाम में परिवर्तित हो जाया करता है। इससे आगे के सूत्र में भगवान पतंजलि देवजी ने एक जाति से दूसरी जाति में जीवात्मा कैसे परिवर्तित होता है वह एक सूत्र में स्पष्ट सूचित किया है :-

'निमित्तम प्रयोजक प्रकृतीनां वरण
भेदस्तु ततः क्षेत्रिकरत्।

धर्मादि प्रकृतियों का निमित्त प्रवर्तक नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह अवश्य होता है, जहाँ धर्म परिपूरित रहेगा, वहाँ अधर्म नहीं होगा, जहाँ सूर्य का प्रकाश होगा, वहाँ अंधकार स्वाभाविक ही नहीं रहेगा। इसी प्रकार से जात्यन्तर परिणाम में भी जिस प्रकार एक कृषक एक ऊपर के खेत को जल से भरता है और वह खेत परिपूरित हो जाने के बाद यदि उसकी सीमा का भेदन कर दिया जाये तो नीचे के खेतों में वह जल अपने आप ही परिपूरित हो जाया करता है। इसी प्रकार योगी जब अपना जात्यन्तर परिणाम करने लगता है तो उसके अवयव और इन्द्रियाँ अपने इस स्थिति परिणति को बदल कर दूसरे परिणाम में प्रवेश कर जाता है और उस योगी का जात्यन्तर परिणाम हो जाता है।

व्यास भाष्य के अनुसार जात्यन्तर परिणाम में वर्ण भेद क्षेत्रिक के समान होता है धर्मादि निमित्त उन देह प्रकृति आदि में प्रवर्तक नहीं होते हैं, क्योंकि कार्य से कारक को प्रेरणा नहीं मिलती है फिर किस प्रकार होता है। इसी बात को समझाने के लिये किसान का उदाहरण दिया गया है इस धर्मादि निमित्त से किसान के समान वर्णभेद होता है। जैसे एक किसान जब एक जल भरी क्यारी से दूसरी क्यारी में जल ले जाना चाहता है तो वह अपने फायदे के अनुसार ऊपर की क्यारी से नीचे की क्यारी में जल को हाथों से नहीं सींचता प्रत्युत उसके मेंड को काट देता है, जिसे फलस्वरूप वह जल उससे आगे की क्यारी में स्वतः

परिपूरित हो जाता है। इसी प्रकार से जात्यन्तर परिणाम चाहने वाले योगी के धर्म देह और प्रकृति के प्रतिबंधक स्वरूप उस अधर्म को नष्ट कर देता है। जो अधर्म अभी तक योगी के देह इन्द्रिय और अवयवों को मेंड बन कर जात्यन्तर परिणाम से रोके रहता है वह हट जाता है उसके हट जाने के बाद देह और इन्द्रियों की प्रकृति जात्यन्तर परिणाम के लिये अपने आप विकार को धारण कर लेती है, इस बात को यूँ समझना चाहिये कि जिस प्रकार एक किसान अपने खेत में जल को भर देता है, किन्तु उस खेत में जल को तो भर देता है, किन्तु उस खेत में उगने वाले पौधे गेहूँ, जौ, चना धान, मूँग आदि अपनी प्रकृति के अनुसार उस जल से रस को स्वयं सींचते है, किसान का काम तो इतना ही था कि उसने खेत में जल को पहुँचा दिया। किन्तु उनके अंदर रस भरना किसान की शक्ति से बाहर है। वह शक्ति ईश्वरीय देन है जो पौधों, की जड़ों और बीजों में रहा करता है यही उन पौधों को जल से परिपूरित कर दिया करती है वैसे ही धर्म भी अधर्म निवृति का कारण तो बनता है, किन्तु उसकी शक्ति को देह इन्द्रियाँ और अवयव स्वतः ही सींचते है शुद्धि और अशुद्धि में धर्म और अधर्म में अत्यन्त विरोध है। इसलिये धर्म प्रकृति के परिवर्तन में उपादान कारण न होकर निमित कारण होता है। इसमें नंदीश्वर और नहुषादि के उदाहरण है जैसे नहुष राजा को ऋषियों के शाप से तत्काल ही उसका जाति परिवर्तन हो गया। इसलिये जब योगी जात्यन्तर परिणाम का विचार करता है। तब वह धर्मादि निमित को पा करके जो जात्यन्तर परिणाम अब तक होता आया है उसके अतिरिक्त भी जब योगी अपने मन में यह सोचता है कि मै अब इतने समय के लिये अमुक जाति में अपने आपको बदल लूँ तो उसके संकल्प मात्र से ही तत्काल परिणाम होने लगता है एवं उसका शरीर एवं इन्द्रियादि बदल जाया करते है। क्योंकि योगी की प्रकृति पर पूर्ण हुकूमत होती है इसका संकल्प ही वर्ण भेद में कारण होता है वैसे लोक में मन के संकल्पानुसार आम परिवर्तन देखने में आते है जैसे कि लेख के आरम्भ में हमने यह समझने की चेष्टा की थी कि मनुष्य के मन के अंदर जो भावनायें कायम रहती है, वह उसकी आकृति पर भी उन भावों का प्रकट कर दिया करती है इस क्षेत्र में मन के प्रभाव का जीता जागता उदाहरण हमारे सुनने में आया। एक मनुष्य के छोटे बच्चे को रात्री के समय भेड़िया उठा ले गया वह बच्चा मादा भेड़ियों ने पाल लिया। कुछ समय बाद आगरे के शिकारियों ने पकड़ा तब उसकी पूरी-पूरी हरकतें तबदील हो चुकी थी। वह भेड़ियों जैसा व्यवहार करता था, भेड़ियों की बोली बोलता था, उसकी आकृति भेड़ियों जैसी थी। वह उसके मन का प्रभाव था कि उसकी हर हरकत भेड़ियों के रूप में परिवर्तित हो गयी थी। योगी के जात्यान्तर परिणाम में उसका संकल्प मात्र ही परिवर्तन का कारण बन जाता है, क्योंकि वह **'कर्तुम कर्तुम कर्तुम'** की योग्यता वाला हो जाता है।

* * *

सम्पादकीय

योग साधना एवं सिद्धियाँ

मैंने अपने पिछले लेखों में एक ही बात सामने रखने का प्रयत्न किया है कि किस प्रकार से योगी आत्मध्यान के प्रभाव से समस्त शक्तियों का स्वामी हो जाता है। यहाँ एक बात को और भी स्पष्ट कर दिया था कि जो भी ऐश्वर्य, शक्ति या चमत्कार के नाम से माना जाता है वह सब प्राकृतिक है अर्थात् बुद्धि आदि सूक्ष्म प्रकृति के निर्मलता का ही परिणाम है यह आत्मा के धर्म नहीं है क्योंकि वह तो कूटस्थ असंग और निर्विकारी है और सब प्राणियों में समान रूप से स्थित है। किन्तु यह बात भी अवश्य है कि उस की चेतनता को प्राप्त किये बिना प्रकृति जड़ ही है। सम्पूर्ण वृत्तियों के निरोध हो जाने पर निर्जीव में दृश्य का आधार चित्त के अपने मूल में विलय हो जाने के कारण और कोई दृश्य अथवा वृत्ति बोध समाप्त हो जाया करता है। अस्तु।

योग साधना के मार्ग सिद्धियाँ वैसे ही अनायास प्राप्त हो जाती है जैसे बद्रीनाथ जाते हुये रास्ते में हमें हरिद्वार, ऋषिकेश, देवप्रयाग आदि-आदि पुण्य स्थलों के दर्शन बिना प्रयत्न के ही सुलभ हो जाता है। हमें उनके दर्शन लाभ के लिये अलग ही प्रयत्न नहीं करना पड़ता। योग साधना में सिद्धियों के लिये आम के आम गुठलियों के दाम वाली बात चरितार्थ हो जाती है। सिद्धियाँ योगी की साधना के मापदण्ड के रूप में मानी जा सकती है हम साधना में कितनी दूरी तय कर चुके है इसका निर्माण भी यह सिद्धियाँ विशेष ही देती है।

योगी साधना के द्वारा मन को समाहित कर समस्त प्रकृति का नियामक बन जाता है। ऐसे योगी की स्थिति का वर्णन करते हुये कहा गया है **'वत्सानुसारिण्या गाव इव योगिनः संकल्पानुविधायिन्यो भूत प्रकृतयः भवन्ति'** अर्थात् समाहित योगी के संकल्प का अनुसरण प्रकृति उसी प्रकार से करती है जिस प्रकार से गौ बछड़े का अनुसरण करती है। एक सूत्र में यह भी कहा गया है कि परमाणु से लेकर महत्तत्व (बुद्धि) पर्यन्त योगी का वशीकार हो जाता है।

सिद्धियों का प्रकाशन– योग परम्परा में यह कहा जाता है कि सिद्धियों के प्रादुर्भाव हो जाने पर साधक को उनका प्रदर्शन नहीं करना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से सिद्धियाँ अस्तंगमित भी हो जाती है, जिससे उसका रास्ता रुक जाता है। सिद्धियों के विषय में ऐसा कहा जाता है कि जिस प्रकार से कोई कुलीन स्त्री अपने शरीर के किसी अंग से वस्त्र के हट जाने पर तुरन्त अपने अंगों को ढक लेती है उसी प्रकार से योगी को

अपनी आन्तरिक शक्ति का प्रदर्शन नही करना चाहिये। यद्यपि योगी के मानस शक्ति का परिचय निकट मे रहने वाले को मिल ही जाता है। पुण्य के विकसित होने पर सुगन्ध तो फैलेगा ही। योगी का हृदय **'सन्त हृदय नवनीत समाना'** के अनुसार अत्यन्त करुणामय होता है। अपने संस्कारी भक्तजनों के संकट मे पड़ जाने पर वह अपने स्तर से उन्हें संकट से छुड़ाने के लिये अपने स्तर से सहायता करते ही रहते है। उस कृपा सहायता मे ही योगी के लोकोत्तर सामर्थ्य का परिचय मिल ही जाता है एक योगी सुदूर जंगल मे साधनारत है तो सामान्य लोग सोच सकते है कि उस योगी का संसार को कोई लाभ नही अथवा उसका किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, किन्तु यह बात पूर्ण रूप से सत्य नही है। उस सुदूरस्थ योगी का कोई भी भक्त या संस्कारी जिस-जिस भाव से चिन्तन करता है योगी को उन सब का ज्ञान होता रहता है। क्योंकि उस अवस्था में योगी व्यापक सत्ता मे लय रहा करता है। हमारे प्राणाधार गुरुदेव भगवान बताया करते थे कि ऐसी अवस्था मे उस भक्त या संस्कारी व्यक्ति का सूक्ष्म शरीर भाव के अनुसार चेष्टाये करता हुआ दिखाई दे जाता है। यदि उस योगी को कोई प्रेम से याद कर रहा है तो उसका प्रेम करने वाले का सूक्ष्म शरीर वैसे ही प्रेम का अभिनय करता हुआ दिखाई देता, इसी प्रकार से यदि कोई द्वेष अथवा क्रोध करता है तो उस व्यक्ति का सूक्ष्म शरीर वैसे ही भाव को प्रदर्शित करता हुआ सामने आ जाता है। यदि कोई संकटापन्न हो उसका तीव्र चिन्तन करता है तो उसका भी योगी को ज्ञान हो जाता है और फिर योगी सहायता के लिये संकल्प करता है व अपने तरीके से सहायता व कृपा कर दिया करते है। हिमालय के योगी भक्तो की ऐसे ही सहायता करते है इस प्रकार से यद्यपि ऐसे योगी सांसारिक व्यक्ति की दृष्टि मे संसार के रंग-मंच पर नही होते किन्तु महापुरुष अपना काम तो करते ही रहते है। हमारे दादा गुरुदेव योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज कहा करते थे कि हिमालय के योगी वही बैठे-बैठे ही अपना काम करते रहते है वे संसार को प्रकाश (लाईट) दिखाकर अपना मुँह फेर लेते है संसारी लोगो को यह ज्ञान ही नही हो पाता कि यह रोशनी कहाँ से व कैसे आई ? सिद्धियों के प्रकाशन के विषय मे बंगाल के प्रसिद्ध योगी लाहिड़ी महाशय कहा करते थे कि सामान्य जनता के लिये अज्ञात सूक्ष्म नियमों के सम्बन्ध मे सुपात्र आदि का विचार किये बिना सबके सामने चर्चा भी नहीं करनी चाहिये और न ही उन्हें प्रकाशित करना चाहिये। वाराणसी के विशुद्धानन्द परमहंस महाराज भी अपने शिष्यों से विभूति प्रदर्शन के विषय मे कहा करते थे- विभूति प्रदर्शन का मेरा उद्देश्य यह कदापि नही कि मै अपने प्रति तुम लोगों की श्रद्धाओं को जागृत करूँ या अपने ऐश्वर्य की तुम लोगों पर धाक जमाकर अपनी प्रशंसा करवाऊँ। मेरा उद्देश्य केवल इतना ही है कि इन्हें देखकर शिष्य तथा

भक्तगण महाशक्ति में, ईश्वर में, देवी देवताओं में, धर्म में, मन्दिरों में प्रभु चर्चा में, साधु संतो में इन्द्रियों से अतीत जगत के सम्बन्ध में प्रेरणा प्राप्त करें उनकी श्रद्धा विश्वास बढ़े व सन्मार्ग पर चलें और पूजा क्रिया में दृढ़ता से लगे। प्रथम प्रविष्ट जिज्ञासु के लिये सिद्धियों का प्रदर्शन करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में वे कहते है-

जो शिक्षार्थी है और अभी मार्ग में प्रविष्ट हुये है उनको योग की विभूतियों का प्रदर्शन करना अनुचित है तथा हानिकारक भी है। क्योंकि इससे अहंकार तथा आसक्ति की वृद्धि हो सकती है। उन्हें इन सब शक्तियों को गुप्त रखना चाहिये कि निकटतम सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति को भी इसका पता न चले किन्तु जो सिद्धयोगी अधिकारी बन गये हैं उनके लिये यह नियम नहीं है उनको अहंकार है ही नहीं, होने की संभावना भी नहीं है अपनी दृष्टि में उनके लिये इन शक्तियों का कोई प्रयोजन नहीं, इस पर वे पूरी तरह जय कर चुके हैं। परन्तु प्रथम प्रविष्ट जिज्ञासु के लिये प्रयोजन के अनुसार इनका प्रदर्शन आवश्यक होता है दिखाये बिना और क्रम समझाये बिना उसके लिये सूक्ष्म तत्व में प्रवेश करना कठिन है। प्रथम प्रवेशार्थी का विश्वास दृढ़ करने के लिये यह आवश्यक होता है। साधारणतया लोग जिसे असंभव समझते है वह असंभव नहीं रहता। सिद्ध योगी के लिये कोई वस्तु असंभव करके नहीं होती। क्योंकि शक्ति के आधीन सब कुछ है। अतः शक्ति आयत्त कर लेने पर सब कुछ हो सकता है। सिद्धियों के प्रदर्शन के विषय में हमारे गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज कहा करते थे कि योगी को समुद्र पीकर भी होठ सूखे दिखाने चाहिये, इसका अर्थ है कि सब कुछ कर सकने की क्षमता होने पर भी अहंकार का भाव अथवा आत्मश्लाघा की चूँ नहीं आनी चाहिये। हिमालय के सिद्ध योगी अपने शिष्यों को अपेक्षित सिद्धियाँ देकर कन्दराओं में बिठा दिया करते है। सिद्धियों को प्रदान करना तथा लेना सिद्ध योगियों के अपने हाथ में रहता है। वे सिद्धियों के दुरुपयोग को देखते हुये क्षण में ही उसे वापिस खींच लिया करते हैं। एक घटना से इस बात की पुष्टि की जा रही है-हमारे दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ऋषिकेश आश्रम के विप्रवेश में रहा करते थे। एक महात्मा पर उनकी कृपा हो गई जिससे उनके पास कुछ शक्तियाँ आ गई। ध्यान की ऊंची स्थिति के साथ-साथ उनमे एक विशेष शक्ति यह भी आ गई थी कि वे साँप बिच्छू को हाथ से ही पकड़कर इधर-उधर फेंक दिया करते थे वह उसे बिलकुल काटते नहीं थे। वह महात्मा जगह-जगह पर जाकर अपनी इस सामर्थ्य का प्रदर्शन करने लगे। इससे उनका अहंकार बढ़ गया। श्री प्रभुजी ने उसे चेतावनी दी कि वह इस प्रकार का प्रदर्शन छोड़ दे। इन वचनों से उसके अहंकार को भारी आघात लगा। वह कहने लगा-आप को मेरे कार्य में दखल नहीं देना चाहिये। मैंने अपने पुरुषार्थ से वह शक्ति अर्जित की

है यदि आपने मुझे कुछ दिया हो तो आप इसे वापिस ले लो। इस पर दादा गुरुदेवजी ने कहा–"अच्छा ? तुझे जो शक्ति दी गई है उसे वापिस ले रहा हूँ।" ऐसा कहकर के उन्होंने कोई वस्तु ले लेने जैसा अभिनय किया। उस महात्मा को इस प्रकार के अभिमान का दण्ड मिल गया। वह जब ध्यान मे बैठा तो आँखे बन्द करने पर अंधेरे के अतिरिक्त उसे कुछ भी दिखाई नही दिया। उसके सब अनुभव बन्द हो गये। उसके साँप बिच्छू आदि को पकड़ने का सामर्थ्य भी लुप्त हो गया, अब साँप बिच्छू उसे काटने लगे। उसे अपने मनमुखता और अहंकार करने का बहुत ही पश्चाताप हुआ उसने श्री प्रभुजी से अपनी स्थिति की पुर्नप्राप्ति के लिए बहुत प्रार्थना की किन्तु श्री प्रभुजी ने अनधिकारी समझकर उपेक्षित कर दिया। वस्तुत: वह श्री प्रभुजी से विधिवत् दीक्षित नही था। उनके चरणों मे आते-जाते रहने पर श्री प्रभु जी की करुणा कृपा हुई थी जिसे वह मूढ़ समझ नही पाया।

दादा गुरुदेवजी के चरणों मे ऐसे बहुत से व्यक्ति आये जिन पर उनकी कृपा हो गई। अच्छी-अच्छी ध्यान की स्थितियाँ बनी। किन्तु वे भी मनमुख होकर चलने लगे, ऐसे लोगों के लिये श्री प्रभुजी का एक ही दण्ड होता था वह उन्हें अपने चरणों से अलग कर देते थे और कह देते थे अब तुम हमारे पास नही आना। हमने तुम्हें जो दे दिया सो दे दिया अब तुम अपना न्यारा काम करो। उन लोगों ने अपना अलग काम किया प्रभुजी की दी हुई थोड़ी-सी शक्ति के प्रभाव से इन लोगों को बहुत नाम और प्रतिष्ठा मिली और बहुतो को मिल रही है। अस्तु।

सिद्धयोग मे सिद्धियाँ सिद्ध गुरु के चरणों मे लोटती है। शिष्य के जीवन मे जैसे-जैसे विकास एवं योग धारण की क्षमता आती-जाती है गुरुदेव उसे शक्ति देकर भरते रहते है सद्शिष्य का योग समाधि एवं पुण्य का खाता गुरुदेव के अपने पास मे रहता है हमारे सिद्ध गुफा संवाई मे एक सेवक ब्रह्मचारी श्री गुरुदेव के समय मे उनके बाहर कार्यक्रमों मे चले जाने पर आश्रम के अन्य कार्यभार के साथ-साथ श्री प्रभुजी की सेवा पूजा व आरती आदि का कार्य सम्भालता था। एकबार उन्होंने श्री गुरुदेव से कहा- गुरुदेव जी। आपकी अनुपस्थिति मे यहाँ लोग मुझ से रज प्रसाद व पुण्य प्रसाद आदि माँगते है मै उन्हें यह सोचकर कि ऐसा करने से साधक की शक्ति अथवा पुण्य क्षीण होता है प्रसाद नही देता हूँ। इस पर गुरुदेव ने कहा- लल्ला। तुम प्रसाद दे दिया करो। तुम्हारा कोई पुण्य-पुण्य क्षीण नही होगा। तुम्हारे सब पुण्य मेरे पास रहते है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सिद्धगुरु अपने शिष्यों के योग-क्षेत्र का वहन स्वयं करते है।

***

आधि-व्याधि के विघ्नों से निवृत्ति के उपाय

आचार्य चन्द्रहास शर्मा

जीवन के धर्मार्थ काम मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने का आधार मनुष्य का स्वस्थ शरीर है। स्वस्थ तभी हो सकता है। जब **'प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थं इत्यभिधीयते'**- इस ऋषि कथित परिभाषा के कोटि में आ सके। शरीर, इन्द्रियाँ, मन तथा आत्मा सभी निरामय हो तभी सत्वगुण का सतत् प्राधान्य बना रह सकता है। सत्व की जितनी-जितनी शरीर मन,बुद्धि मे मात्रा अधिक रहेगी उतनी ही मात्रा मे प्रसन्नता रहेगी। जो जरा मरण व्याधि के दुःख से आक्रान्त है उसमें प्रसन्नता कहाँ से आ सकती है। वस्तुतः प्रत्येक मनुष्य के जीवन का उद्देश्य है कि वह जन्म लेकर अपने स्वरूप का योग विज्ञान के अभ्यास से साक्षात्कार कर ले। इस हेतु उसे दृढ़िष्ठ, बलिष्ठ और कर्म परायण शरीर चाहिये। यदि कास, श्वास, यक्ष्मा, कुष्ठ आदि व्याधियों से दुःखित जीवन है तो जगत् भी दुःखरूप लगने लगता है। कोई-कोई पुण्यात्मा योग, यज्ञ, ज्ञान, तप, वेदाध्ययन, इन्द्रिय निग्रह, सदाचार तथा महापुरुषों के आशीर्वाद से अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त करने मे समर्थ होता है। जैसे टूटी नाव से समुद्रपार करना असम्भव है उसी प्रकार रोगग्रस्त शरीर और मन से आत्मकल्याण कर सकना असम्भव है। **रसरत्न समुच्चय** में आचार्य वाग्भट्ट ने लिखा है-

भ्रूमध्यगतं यच्छिखिव विद्युत्सूर्येन्दुवज्जगद्भाति।
केषांचित्पुण्यदृशामुन्मीलति चिन्मयं परं ज्योतिः।।
परमानन्दैकरसं परमं ज्योतिः स्वभावमविकल्पम्।
विगलित सकल क्लेशं ज्ञेयं शान्तं स्व संवेद्यम्।।
तस्मिन्निधाय मनः स्फुरदखिलं चिन्मयं जगत्पश्यन्।
उत्सन्न कर्मबन्धो ब्रह्मत्वमिहैव चाप्नोति।।
रागद्वेष विमुक्ताः सत्याचाराः मृषा रहिताः।
सर्वत्र निर्विशेषाः भवन्ति चिद्ब्रह्म संस्पर्शात्।।
सिद्ध स्त्वणिमादियुता विलसद्देहाः सदोदिता नन्दाः।
ब्रह्म स्वभावममृतं सम्प्राप्ताश्चैव कृतकृत्याः।।

अर्थात्- भ्रूमध्य भाग में विद्युत सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश की तरह चिन्मय आत्म प्रकाश की ज्योति भासित होती है। वात-पित्त-कफ इन दोषों की विकृति से नाना रोगों के कारण प्राणशक्ति छिन्न-भिन्न होती रहने के कारण सर्वसाधारण को इस ज्योति के दर्शन का सौभाग्य नही मिल पाता। किसी-किसी पुण्यात्मा को इस परमानन्द रसरूप आत्मज्योति

का दर्शन तभी मिल पाता है जब कि वह पुर्णतया स्वस्थ्य रहे तथा उस ज्योति दर्शन के लिए योगसाधना करे। उसके दर्शन होने पर समस्त क्लेशों का अन्त हो जाता है। तथा शान्ति का आनन्द प्राप्त कर संसार का आनन्द स्वरूप भासित होने लगता है। ऐसी स्थिति उपलब्ध होने पर प्राणी कर्मबन्धन से मुक्त होकर ब्रह्मत्व की स्थिति को पा जाता है। उस स्थिति में आरूढ़ होने पर रागद्वेष नहीं रहते, जीवन सत्यपरायण, कपट रहित आचरणवाला संसार से विलक्षण ही बन जाता है। उसके अन्दर अग्रिम महिमा आदि अलौकिक सिद्धि-सामर्थ्य प्रकट हो जाती है। हरक्षण आनन्द का अनुभव करता है तथा दूसरों को भी आनन्द प्रदान करता रहता है। ऐसा जीवन जीने वाला ही कृतकृत्य हो पाता है।

जीवन के उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये व शरीर और मन को स्वस्थ्य रखने के लिए चिकित्सा का आश्रय लिया जाता है। चिकित्सा तीन प्रकार की मानी गयी है- आसुरी, मानुषी तथा दैवी। आचार्य चरक ने इसका दूसरे प्रकार से विभाजन किया है। यथा सत्वावजय, क्रियाव्ययाश्रय तथा दैवव्यवाश्रय। शल्य चिकित्सा (Surgery) आसुरी चिकित्सा है द्रव्य और औषधियों की चिकित्सा मानुषी चिकित्सा है तथा धातु रत्न व पारद के प्रयोग (भस्म, पिष्टि आदि) तथा मंत्र, जप, होम, अभिमर्षण आदि विधियों से की गयी चिकित्सा दैवी चिकित्सा कहलाती है। इसी प्रकार आचार्य चरक निर्दिष्ट चिकित्सा पद्धतियों का अभिप्राय है। इन चिकित्सा पद्धतियों का आधार रोगों की प्रकृति यथा साध्य, कष्ट साध्य, असाध्य, रोगी की प्रकृति-सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी या वातप्रधान, पित्तप्रधान अथवा कफप्रधान तथा जीवन के प्रति मान्यता, अस्तिक या नास्तिक, भौतिक या आध्यात्मिक आदि रहा है। आयुर्वेद वर्तमान जीवन को ही जीवन मानकर चिकित्सा से प्रवृत्त नहीं होता। भारतीय दर्शनों की मान्यता है कि जीवन अनादि काल से एक सतत् प्रवाह है। जो कर्मों के योग के लिए तथा कर्मों के द्वारा कर्मों का समूलोन्मूलन करने के लिए (मोक्ष के लिए) है। उसका निश्चित उद्देश्य है। वर्तमान जन्म का कारण पूर्वजन्म कृत कर्म है। पूर्वजन्म मे किये गये कर्मों का भोग की रोग और व्याधि रूप में कष्ट का कारण होता है। इसलिये चिकित्सा से अधिक पथ्य और सदाचार, सद्वृत, आप्तोवचन सेवन पर आयुर्वेद का विशेष बल रहा है। प्रज्ञापराध अधिकांश व्याधियों का कारण है। कुछ व्याधियाँ आगन्तुक या संस्पर्श या संक्रमण से भी (Infection Contegious) तथा कीटाणुओं सर्प आदि जन्तुओं के दंश से भी सम्भव है किन्तु उनका कारण भी कर्मविपाक सिद्धान्त पर आधारित है। ज्योतिष शास्त्र कर्मजभव व्याधियों के कारणों की खोज करता है। किस ग्रह के गोचर में आ जाने पर रोगी की जन्मकुण्डली को उसी ग्रह की महादशा अन्तरदशा तथा प्रत्यन्तरदशा होने पर उसकी स्थान, भाव तथा दृष्टिगत

प्रभाव के कारण क्या-क्या रोग सम्भव है-इसका निदान पूर्व में ही ज्योतिषशास्त्र से सम्भव है। उस रोग के लिए किस नक्षत्र तथा किस स्थान की औषधि किस मुहूर्त में देने पर लाभप्रद होगी। यह विज्ञान भारत के आयुर्वेदीय ज्योतिष में ही है। एलोपैथी को अंग्रेजों का प्रश्रय मिलने से उसके डाक्टरों ने अपने अल्पज्ञान के बल पर आयुर्वेद के वैद्यों को Quack, अन्ध विश्वास फैलाने वाले अवैज्ञानिक और न जाने क्या-क्या प्रचार कर जन सामान्य में अपनी घुसपैठ बना ली। आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धति का आधार जीवन के सम्बन्ध की वैज्ञानिक खोज है। और वह है कर्म सिद्धान्त। पुनर्जन्म वाद। इसी आधार पर क्षेत्रज्ञरोगों का अथर्ववेद में चिकित्सा विज्ञान में तंत्र-मंत्र बताया गया है। प्राचीन वैद्य इसी भारतीय पद्धति के सभी अंगों में निष्णात होने से सर्वजनसममान्य तथा सर्वथा सफल वैद्य हुआ करते थे। रोगी की प्रकृति रोग की प्रकृति, औषधि में प्रयुज्य द्रव्यों के गुणों की प्रकृति, के ज्ञान के साथ-साथ देश-काल की प्रकृति को जानकर सात्म्य चिकित्सा करते थे। मेरे पूज्य पिताश्री आयुर्वेदाचार्य के साथ-साथ ज्योतिष और कर्मकाण्ड के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। तत्कालीन आयुर्वेद के मार्तण्ड विशेषरूप से रस शास्त्र के मर्मज्ञ वैद्य पं० हरि (रसयोग सागर के कर्ता) के वे पट्टशिष्य थे। आचार्य यादव जी त्रिकम जी, आचार्य गणनाथ सेन आदि से बम्बई में उन्होंने शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी। वे शल्य-चिकित्सा से लेकर रस, औषधि, मंत्र, यज्ञ, जप चिकित्सा सम्मार्जन इन सभी का भिन्न-भिन्न रोगों में सफल प्रयोग कर रोगी को नीरोग कर दिया करते थे।

व्याधियों के कारणों की मीमांसा करते हुए आचार्य चरक कहते हैं कि- **काल प्रकृतिमुद्दिश्य निर्दिष्टः प्राकृतो ज्वरः।** 'अर्थात् ऋतुओं की सन्धि में अनैसर्गिक, अतियोग या मिथ्या या हीनयोग से मनुष्यों में रोग पैदा होते हैं। दोषज सब रोगों की उत्पत्ति में तीन सर्वसाधारण कारण होते हैं-

कालबुद्धिन्द्रियार्थानां योगो मिथ्या न चाति च।
द्वयाश्रयाणाम् व्याधीनां त्रिविधो हेतु संग्रहः।। (चरक)

अर्थात् कालकृत कारण से (ग्रहगति, ऋतु परिवर्तन) बुद्धिगत (प्रज्ञापराध) विरुद्धप्रकृति के संयोग से नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हुआ करती है। सदाचार का अभाव सभी रोगों का मूल कारण है। शाङ्र्गधर पद्धति में उल्लेख है कि-

'व्याधिर्वित्त विनाशः प्रियविरहो दुर्भगत्व मुद्वेगः।
सर्वत्राशाभंग स्फुटं भवति ह्यकृति पुण्यस्य।।

अर्थात् पूर्व जन्मकृत कर्मों के परिणाम से ही रोग, धननाश, प्रियव्यक्ति का वियोग, कुरूपता, चित्तोद्वेग, सब कार्यों में असफलता आदि पुण्यहीन व्यक्तियों को हुआ करते

है। अंधता, दरिद्रता, पंगुता, कुष्ठ– ये सभी पूर्व जन्मार्जित पापों का परिणाम है। कुशल वैद्य को कर्मविपाक को समझकर उसमें अनुकूल चिकित्सा करनी चाहिये। अन्यथा कितनी ही गुणकारी औषधि का रोगी को सेवन कराया जाय उसे लाभ नहीं होगा। इसका कारण यह है कि वैद्य केवल शरीर को आधार मानकर रोग का निदान कर के चिकित्सा प्रारम्भ कर देता है। उसे यह भी ज्ञान करना चाहिये कि पूर्व जन्म के कुकर्मों के दोष लिंग शरीर द्वारा अगले जन्म मे रोगो के रूप मे संचारित हो सकते है लिंग शरीर की चिकित्सा औषधि मंत्र, यज्ञ जप, परिमार्जन आदि है। उनको जाने बिना लाभ नहीं होगा। मेरे पास ऐसे अनेक रोगी आते है जिन्हें लम्बे समय से औषध सेवन करने पर भी कोई लाभ नहीं हो रहा। मै उनकी जन्म कुण्डली के विश्लेषण से कर्म विपाक का अनुमान लगाकर तदनुसार चिकित्सा का परामर्श देता हूँ। उससे आश्चर्य जनक लाभ होते देखा गया है। माधव निदान को निदान करने का श्रेष्ठ आधार माना गया है। उसमें देव, नक्षत्र, तथा ग्रह जनित पीड़ा का स्पष्ट उल्लेख है। जब तक उनकी शान्ति नही करायी जायेगी औषधि सेवन से आरोग्य लाभ नही होगा–

'मंत्र भेषजयोर्यत्र साफल्यं नैव दृश्यते।
तत्र नक्षत्रजां पीडां जानीयाद् भिषगुत्तमा।।

सुश्रुत ने भी **'ग्रहनक्षत्र पीडैर्वा'** इस प्रकार के कथन द्वारा उपर्युक्त सिद्धान्त की पुष्टि की है। रोग निदान के विषय मे चतुर्विध मत **सुभाषित** मे इस प्रकार उधृत किये गये है–

वैद्याः वदन्ति कफपित्तमरुद्विकाराः, ज्योतिर्विदा ग्रहगतिं परिवर्तयन्ति।
भूताभिषंग इति भूते विदो वदन्ति, प्राचीन कर्मबलजन्मुनयो वदन्ति।।

अर्थात्–वैद्यजन रोग का कारण वात, पित्त, कफ, जन्य दोषों को मानते है। ज्योतिषी ग्रहों के परिवर्तन के प्रभाव को रोगों का कारण बताते है। भूतविद् प्रेत, राक्षस, पिशाच आदि अदृश्य जीवों को रोग का कारण मानते है। जबकि मुनिजन प्राचीन कर्मों को ही रोग का कारण मानते है स्मृति– रत्नाकरकार का भी यही मत है कि पूर्व जन्मकृत पाप ही व्याधि के रूप मे पीड़ादायक होते है उनकी शान्ति दान, तप, जप, होम, देवार्चन आदि दैवव्यपाश्रय औषधियों से हुआ करती है।

'पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाध्यते।
तच्छान्तिरौष धैर्दानैर्जप होमार्चनादिभिः।।

आचार्य चरक ने भी दैवव्यपाश्रय औषधि के प्रसंग मे जिन उपायों का निरूपण किया है, वे इस प्रकार है–

"भक्तया मातापितॄणां च गुरूणां पूजनेन च।
ब्रह्मचर्येण तपसा सत्येन नियमेन च।।
जप होम प्रदानेन वेदानां श्रवणेन च।
ज्वराद्विमुच्यते शीघ्रं साधूनां दर्शनेन च।। (चरक)

अर्थात्-माता-पिता की भक्ति करने, गुरुओं का पूजन करने से ब्रह्मचर्य पालन से, तपस्या करने से, सत्यभाषण, नियमों का पालन करने, जप होम तथा दान करने से, वेदों के श्रवण से तथा साधुसन्तों का दर्शन करने से रोगी ज्वर मुक्त हो जाता है।

'दैवव्यपाश्रय चिकित्सा में आचार्य चरक ने अभिमंत्रित औषधि, माणिक्य वैदूर्यादि रत्न मंगलकृत्य बलि, उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित, उपवास, शान्तिपाठ, देवताओं का पूजन, देवदर्शन तथा तीर्थयात्रा को स्थान दिया है।

संकीर्तन तथा अथर्ववेदीय यज्ञों से अनेकों रोग दूर होते देखे गये हैं। ज्वरनाशक हेतु शास्त्रों के प्रमाण भी इस सम्बन्ध में हैं।

विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम्।
स्तुवन्नाम सहस्रेण ज्वरान् सर्वानपोहति।। (चरक)
अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारण भेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं, सत्यं वदाम्यहम्।
सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रव नाशनम्।
शान्तिदं सर्वरिष्टानां हरेनामानुकीर्तनम्।।

ॐ अच्युताय नमः। ॐ अनन्ताय नमः। ॐ गोविन्दायनमः।

इन तीन मंत्रों से अभिमंत्रितकर सुवर्णतापी जल रोगी को पिलाने से कष्ट साध्य रोग शीघ्र ठीक होते देखे गये हैं। गोविन्द दामोदर स्तोत्र में भी नाम संकीर्तन के औषधीय व्याधिहर गुण का कथन मिलता है-

आत्यन्तिकं व्याधिहरं जनानां चिकित्सितं वेदविदो वदन्ति।
संसारतापत्रयनाशबीजं गोविन्द दामोदर माधवेति।।

कामला तथा हृदय रोगों में ऋग्वेद का निम्नलिखित मंत्र का जप लाभकर है-

उदयन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवं।
हृद्रोगं मम् सूर्य हरिमाणं च नाशय।।

इसी प्रकार गण्डमाला रोग का उपचार ऋग्वेद के निम्नलिखित मंत्र से सम्भव है-

अपचितः प्रपतत सुपर्णो वसतेरिव।
सूर्य कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु।। (ऋग्वेद)

(जैसे गरुड़ अपने निवास स्थान से दूर भाग जाता है इसीलिए हे गण्डमाला तू मेरे शरीर से भाग जा। भगवान सूर्य उसकी औषधि करें तथा चन्द्रमा इसे दूर करें।)

राजयक्ष्मा T.B. निवारण के लिए योगरत्नाकर में अधोलिखित कथन मिलता है-

'सत्येनाचारयोगेन रविमण्डल सेवया।
वैद्य विप्रार्चनाच्चैव रोग राजो निवर्तते।।

सत्य, सदाचार, सूर्य की सेवा और वैद्य तथा ब्राह्मणों की पूजा-इनसे राजयक्ष्मा का नाश होता है।

सूर्य की उपासना आरोग्य प्राप्ति की महौषधि मानी जाती है। उक्ति प्रसिद्धि है-**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्।**

कुष्ठादि महारोगों के शमन के लिए सूर्य स्तोत्र का श्रद्धा सहित नित्यपाठ करना हितकर बताया गया है। **'कुष्ठादिरोगशमनं- महाव्याधि विनाशनम्। त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यमरोगी बलवान् भवेत्। सर्व व्याधि महारोग भूतबाधास्तथैव च। ये चान्ये दुष्ट रोगाश्च ज्वराती साराय:। जपमानस्य: नश्यन्ति जीवेच्च शरदां शतम्।।** (आदित्य हृदय स्तोत्र।) संस्कृत कवि बाणभट्ट के श्वसुर, मयूरभट्ट महारोग से पीड़ित हुए तब उन्होंने **'सूर्यशतक'** से सूर्य की आराधना की उससे वे रोगमुक्त हो गये। उड़ीसा के राजा नरसिंह देव कुष्ठ से पीड़ित थे। उन्होंने कोणार्क में भव्य सूर्य मन्दिर बनवाया और सूर्य देवता की उपासना करके उनको प्रसन्न किया और उसकी कृपा से वे कुष्ठरोग से मुक्त हो गये। उन्होंने सूर्य देवता के प्रति कृतज्ञता के भाव को प्रकट करने के लिए अपने बेटे का नाम **'भानुदेव'** रखा था।

इस चिकित्सा कर्म में प्रवृत्त होने के लिए कुछ वाञ्छनीय योग्यताएँ शास्त्रों में निर्दिष्ट की गयी है। यदि उन योग्यताओं को अर्जित किये बिना मंत्र, रत्न, अवमर्षण, यज्ञादि के द्वारा चिकित्साकार्य किया जायेगा तो वह उसी प्रकार व्यर्थ होगा जैसे बुझी हुई अग्नि में आहुति डालकर हवन करना। श्रद्धा-बिहार निर्लोभिता, कर्म कुशलता चित्त की शान्ति, प्राणों में बल तथा संकल्पशक्ति यथेष्ट होगी तभी मंत्र प्रयोग से कोई कार्य सिद्ध हो सकेगा। प्रयोज्य निष्ठ इन योग्यताओं के अतिरिक्त उपयुक्त काल (नक्षत्र, मुहूर्त, करण, दिवस आदि) में सम्यक किये गये कार्य ही फलवान होते है सात्विक प्रकृति के प्राणियों पर ही तंत्र-मंत्र होम पूजा की चिकित्सा प्रभावी रहती है। क्योंकि ऐसे प्राणियों में श्रद्धातिरेक से ध्वनियों, तरंगों के रूप में मंत्रों पर मणियों के द्वारा विकीर्ण प्रभाव ग्राह्य हो जाते

है। जो तामसिक और राजसिक प्रकृति के है। उनका मन एकाग्र नही हो पाता। अतः ऐसे वैद्यों के आदेश, संदेश और आवेश रोगी के मन को छूने में समर्थ नही हो पाते। इसलिए वैद्य को मंत्रसिद्ध महावीर, निश्चल, शिवभक्त, देवार्चन परायण, शास्त्र के क्रम को ठीक-ठीक गुरुमुख से समझा हुआ। तंत्र-मंत्र शास्त्र में कुशल होना चाहिए। इसी प्रकार रोगी को भी निम्न गुणों से युक्त हो तभी दैवव्यपाश्रय चिकित्सा से लाभान्वित होगा। रोगी गुरुभक्त, सदाचारी, सत्यव्रती आलस्यहीन, आज्ञाकारी, दम्भात्सर्य रहित सरल, शील आचार युक्त, शान्त, मंत्रादि में विश्वास करने वाला तथा देवता की आराधना करने वाला होगा तभी उस पर चिकित्सा का प्रभाव होगा। जो नास्तिक है, गुरु के आशीर्वाद के बिना प्राप्त किये, चोरी छिपे इधर-उधर से तंत्र-मंत्र का ज्ञान प्राप्त कर लिया उनको मंत्र, मणि, औषधि आदि कुछ भी सिद्ध नही हो सकता। गुरुभकित के बिना यह चिकित्सा कभी सिद्ध नही होती। गुरुभक्ति भी ऐसी दृढ़ हो जैसी कि पतिव्रता की अपने पति में होती है, बिना पंख निकले पक्षी में जैसे अपने माता-पिता में होती है तथा जैसे की हनुमान की अपने इष्ट देव भगवान श्रीराम के चरण कमलों में पराभकित है।

योगाभ्यास करते-करते बीच-बीच में अन्तरायों के रूप में आधि-व्याधियाँ सताने लगे तो चतुर साधक को उन्हें मणि, रत्न, मंत्र, औषधि तथा देवार्चन, यज्ञ, दान, उपवास आदि के द्वारा दूरकर कर्म विपाक का तुरन्त प्रायश्चित कर अपने मन और शरीर को नीरोग बनाकर जप और ध्यान में लग जाना चाहिये। अभ्यास को इतना दृढ़ बना लेना चाहिये कि चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय मन सहज आनन्द में डूबा रहे जिससे संचित कर्मों के रूप में कर्माशय में पड़े हुए पाप कर्म आधि-व्याधि के रूप में परिणाम पैदा करने का कोई छिद्र ही प्राप्त न कर सके। **भरी सराय रहीम लखि आप पथिक फिर जाय** के नियमानुसार यदि मन और बुद्धि में हरक्षण गुरुप्रदत्त मंत्र की माला चलती रहेगी तो शुक्ल कर्म क्रियमाण कर्मों के रूप में तैयार होते रहेंगे जिससे पाप कर्म दग्ध होते रहेंगे।

***

''मामेकं शरणं व्रज''

अनन्य भाव से केवल मेरी शरण में आ जा

पं० राजेन्द प्रसाद पाठक

जीवात्मा के जन्म पाते ही, परिवार के सदस्य की सदस्यता से आत्मा प्रसन्न हो जाती है। स्वभाव से स्वार्थी जीव, जीव को स्वकर्मधर्मादिक कर्तव्य-कर्म में, मन से तुरन्त बाँध लेने की चेष्टा करता है। बड़े-बूढ़े तो भरसक विवाहादि संस्कार की बातों तक पहुँच जाते हैं। जिस जन्म-जात शिशु को अपने शरीर, गोत्र, जाति, नाम आदि का ज्ञान तक नहीं है; किन्तु फिर भी निर्भय, निःसंकोच, निश्चिंत, निःशंक और निःशोक भाव में लीन आत्मा की ममता रहित विलक्षण मुद्रा देखते ही बनती है। क्या यह ज्ञान उस जीवात्मा को है कि यह घर, कुटुम्ब, वस्तु, -बन्धु बान्धव माता-पिता आदि मेरे ही हैं।

अतः श्री प्रभु जी कहते हैं कि- **''सम्पूर्ण धर्मों का आश्रयण छोड़कर तू केवल मेरी शरण में आ जा। मैं तुम्हे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।'' ''सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।** अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (गीता १८/६६) तात्पर्य यह है कि श्री प्रभु प्राप्ति में जन्मजात शिशु की तरह साधक-भक्त को समर्पित होना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है, कारण कि मात्र धर्म का आश्रय लेने वाले बार-बार जन्म मरण को प्राप्त होते हैं- **''एवं त्रयीधर्म मनुप्रपन्ना गतागतं काम कामा लभन्ते'** (गीता ९/२१) इसलिये धर्म का आश्रयण छोड़कर श्री भगवान का ही आश्रय लेने पर अपने धर्म की, अपने जाति वर्णादि की निर्णय लेने की जरूरत नहीं पड़ती। 'धर्म' शब्द का अभिप्राय 'कर्तव्य-कर्म' से है क्योंकि कर्मों का त्याग करने से न तो निष्कर्मता की प्राप्ति होती है और न सिद्धि ही होती है। जो बाहर से कर्मों का त्याग करके भीतर से विषयों का चिन्तन करता है वह मिथ्याचारी है। जो मन-इन्द्रियों को वश में करके कर्तव्य-कर्म करता है, वही श्रेष्ठ है। कर्म किये बिना शरीर का निर्वाह भी नहीं होता, इसलिये कर्म अवश्य करना चाहिये। मनुष्य और देवता दोनों ही कर्तव्य का पालन करते हुये कल्याण को प्राप्त करते हैं। कर्तव्य कर्म करके अपना निर्वाह करने वाला सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है और जो केवल अपने लिये ही कर्म करता है। वह पापी पाप का ही भक्षण करता है। आसक्ति से रहित होकर कर्म करने वाला मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है, अतः कर्तव्य कर्मों का पालन ही 'धर्म' है इस प्रकार श्री प्रभु ने बताया कि यज्ञ, दान, तप और अपने-अपने वर्ण आश्रमों के जो कर्तव्य हैं उनका कभी त्याग नहीं करना चाहिये। परन्तु कर्मयोगी की सब क्रियाओं में कर्तृत्वाभिमान का

सर्वथा त्याग होना चाहिये, क्योंकि कर्मयोगी सब क्रियायें उसी भाव से करता है जिस भाव से नाटक में एक नाटकीय पात्र करता है यही कर्म का श्री प्रभु के प्रति समर्पण है। इसी शरण-समर्पण में साकारतः चिन्ता न करने और सम्पूर्ण पापों से उन्मुक्तता की बात निश्चित-निश्चिन्त है। जब तक जीव स्वयं के बलादि का अभिमानी होता है तब तक उन करुणाधार की शरणागति के विश्वास का आधार निराधार सा असमर्पण है। ऐसा प्रमाण कई स्थलों पर मिलता है। "कौरवों की सभा में द्रौपदी का चीर खींचा गया तो द्रौपदी अपनी साड़ी को हाथों से दाँतों से पकड़ती है, और धर्मादि की दुहाई देते हुये श्री भगवान् को पुकारती है। अपने बल, धर्मादि का आश्रय रखते हुये भगवान को पुकारने से भगवान के आने में देरी लगती है परन्तु जब द्रौपदी अपना उद्योग सर्वथा त्यागकर श्री भगवान पर ही निर्भर हो जाती है, तब दुःशासन चीर को खींच-खींचकर थक जाता है और चीरों का ढेर लग जाता है, पर द्रौपदी का कोई भी अंग उघड़ता नहीं।" इतना ही बल्कि जब माता यशोदा, भगवान श्री कृष्ण को बालक समझकर उन्हें रस्सी से बाँधती है तो रस्सी (भय और भयाहंकार) दो अंगुल मात्र छोटी हो जाया करती है किन्तु स्वयं श्री प्रभु समर्पण पश्चात वे त्रयलोकयनाथ बँधते देर नहीं लगाते। इस बात से सम्बन्धित एक दृष्टान्त और देखें- अर्जुन का कर्ण के साथ युद्ध हो रहा था। इस बीच अचानक कर्ण के रथ का एक चक्का पृथ्वी में धँस गया। कर्ण रथ से नीचे उतर कर रथ के चक्के को निकालने का प्रयत्न करने लगा अर्जुन से बोला कि "जब तक मैं यह चक्का निकाल न लूँ तब तक तुम ठहर जाओ। क्योंकि तुम रथ पर हो और मैं रथ से रहित हूँ और दूसरे कार्य में रत हूँ। ऐसे समय रथी को उचित है कि उस पर बाण न छोड़ें। तुम सहस्त्रार्जुन के समान शस्त्र और शास्त्र दोनों के ही ज्ञाता हो इसलिये मेरे ऊपर प्रहार करना उचित नहीं है।" कर्ण की धर्मोचित बात सुनकर अर्जुन ने बाण नहीं चलाया तब भगवान ने कर्ण से कहा कि तुम्हारे जैसे आततायी को किसी तरह से मार देना ही धर्म है- पाप नहीं। यह सौभाग्य की बात है कि तुम्हें इस समय धर्म की बात याद आ गयी परन्तु जो स्वयं धर्म का पालन नहीं करता उसे धर्म की दुहाई देने का कोई अधिकार नहीं है, कारण कि अभी-अभी तुम छः महारथियों ने मिलकर अभिमन्यु को घेर कर उसे मार डाला। इस प्रकार यदि अर्जुन अपनी बुद्धि से धर्म का निर्णय करते तो भूल कर बैठते, अतः उन्होंने धर्मों का निर्णय श्री भगवान पर ही रखा और भगवान ने धर्म का निर्णय किया- "अपना अनिष्ट करने के लिये आते हुये आततायी को बिना विचार किये मार डालना चाहिये। आततायी को मारने से मारने वाले को कुछ भी दोष नहीं लगता"। **"आततायिन मायान्तं हन्यात् एवापि चारयन्। नाततायी बधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।।** (मनु० ८/३५०-३५१)

इस प्रकार **"मामेकम् शरणम् व्रज"** जैसी बात श्री प्रभु जी ने कहकर स्पष्ट कर दिया कि एक श्री प्रभु के शरण होने का तात्पर्य- केवल भगवान ही मेरे है और वे ऐश्वर्य सम्पन्न है तो बड़ी अच्छी बात और उनमे कुछ भी ऐश्वर्य नही है तो बड़ी अच्छी बात। वे बड़े दयालु है तो बड़ी अच्छी बात और इतने कठोर है कि उनके समान दुनियाँ मे कोई है ही नही, तो बड़ी अच्छी बात। शरणागत या समर्पण वश ऐसी कोई बात नही होती क्योंकि निष्काम भाव-भक्ति ही भक्त की शोभा है। श्री उद्धव जी ब्रज मे जाकर गोपियों को योग निष्ठता की बात दुहराते है तो गोपियाँ कहती है कि- "मेरे प्रियतम श्री कृष्ण असुन्दर हो या सुन्दर शिरोमणि हों, गुणहीन हो या गुणियो मे श्रेष्ठ हों, मेरे प्रति द्वेष रखते हो या करुणासिन्धु रूप से कृपा करते हो, वे चाहे जैसे हो, मेरी तो वे ही एकमात्र गति है। वे चाहे मुझे हृदय से लगाकर हर्षित करें या चरणों मे लिपटे हुये मुझे पैरोंतले रौंद डाले अथवा दर्शन न देकर मर्माहत ही करें वे परम स्वतन्त्र श्री कृष्ण जैसे चाहे, वैसे करें, मेरे तो वे ही प्राणनाथ है, दूसरा कोई नहीं।"
"असुन्दरः सुन्दर शेखरो वा गुणैः विहीनो गुणिनां वरो वा। द्वेषी मयि स्यात् करुणा अम्बुधिर्वा श्यामः स एवाद्य गतिर्ममायम्।। अश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मामदर्शनान्मर्महतां करोतु वा। यथा तथा वा विदधातु लम्पटो मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः।।"
(शिक्षाष्टक- ८)

इस प्रकार शरणागत समर्पण अवस्था मे मनुष्य यज्ञदान, तप, तीर्थ, व्रत, जप, स्वाध्याय, ध्यान, समाधि आदि जो भी क्रियाएँ करते है वे सब भगवान के लिये करते है, भगवान की प्रसन्नता एवं उनकी आज्ञा पालन हेतु करते है, अपने लिए नहीं करते, कारण कि जिनसे क्रियाएँ की जाती है, वे शरीर इन्द्रियाँ, अन्तःकरण आदि सभी परमात्मा के है, हमारे नही। जब शरीरादि हमारे नही है तो घर, जमीन जायदाद, रूपये-पैसे, कुटुम्ब आदि भी हमारे या हमारे नवजात शिशु के लिये हमारे नही है। ये सभी प्रभु के है और इनमे जो सामर्थ्य है, समझ आदि है वे सभी श्री प्रभु की सत्ता से है और हम खुद भी श्री प्रभु के ही है शरणागत भक्त को कभी किञ्चिन्मात्र चाह भी नही रहता। कुछ भी चाहने का भाव न होने से भगवान स्वाभाविक ही प्यारे लगते है, मीठे लगते है क्योंकि जिसमे चाह नही वह भगवान का खास घर है। यदि चाहना भी साथ रक्खें और भगवान को भी साथ रक्खे तो वह भगवान का खास घर नही है। भगवान के साथ सहज स्नेह हो, स्नेह मे कोई भी मिलावट न हो अर्थात् कुछ भी चाहना न हो। जहाँ कुछ भी चाहना हो जाय वहाँ प्रेम कैसा ? वहाँ तो आसक्ति, वासना, मोह, ममता ही होते है अतः मानस संकेत करता है-

"जाहि न चाहिअ कबहु कछु तुम्ह सन सहज सनेह।
बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेह।।"

(मानस २/१३१)

जहाँ गुण प्रभाव आदि को लेकर भगवान के शरण होने की बात का भाव आता है वहाँ जीव गुण प्रभावादि से ही बँधकर आसक्ति में बँधते हुये कामना करता है। ऐसी अवस्था में मुक्ति, ऐश्वर्य आदि तो मिल सकता है। किन्तु भगवान नही मिल सकते। भगवान के शरण होने से भगवान के गुणादि चले जायेंगे ऐसी भी बात नही है परन्तु हमारी दृष्टि श्री भगवान पर ही लक्षित होना चाहिये; गुण आदि पर नहीं। सप्तर्षियों ने जब पार्वती के सामने शिवजी के अनेक अवगुणों और विष्णु के अनेक सद्गुणों का वर्णन करते हुये उनको शिवजी का त्याग करने के लिये कहा, तब पार्वती ने उनको यही उत्तर दिया:-

"महादेव अवगुन भवन विष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम।।

(मानस १/८०)

अत: प्रभाव की तरफ देखना यह सिद्ध करता है कि हमारे में कुछ पाने की कामना है। हमारे मन में उस कामना वाले पदार्थ का आदर है जब तक हमारे मन में कामना है, तब तक हम प्रभाव को देखते है अगर हमारे मन में कोई कामना न रहे, तो भगवान के प्रभाव, ऐश्वर्य की तरफ हमारी दृष्टि नही जायेगी। केवल भगवान की तरफ, दृष्टि होगी तो हम भगवान के शरण हो जायेंगे।

श्री भद्भागवत महापुराण में संकेत आता है कि मदमस्त सैकड़ों, हाथियों जैसा बलशाली गजराज अपने हजारों हथिनियों के झुन्ड के साथ त्रिवेणी (नारायनी) जैसी विशालकाय प्रवाह जलधारा में जब जल क्रीड़ा एवं जलपान हेतु जल प्रविष्ट होता है तो अचानक मगरमच्छ (श्रापित गन्धर्व) उसका पैर पकड़ लेता है और जल के अन्दर खींचने की चेष्टा करता है, और गजराज बाहर की ओर खींचता है इस प्रकार की अवस्था में गजराज को सौ वर्ष बीत जाते है। यहाँ तक कि हजारों हथिनियों ने भी मिलकर उसकी सहायतार्थ बाहर निकालने की चेष्टा से व्यर्थ हो जाती है और उसी अवस्था में छोड़ देती है, तब गजराज उस परम करुणा निधान श्री प्रभु की अपनी सूँड ऊपर करके निरीह हो प्रार्थना करता है कि -

"वे करुणार्णव परमात्मा जिनके आने का समय, स्थान आदि की निश्चितता से सर्वथा परे है वे हमारी सहायता कर उद्धार करें। अत: शरणागत होने पर परम प्रभु आते ही है।" इस प्रकार परमात्मा श्री प्रभु शरणागत अवस्था में भी भाव को ही देखते है।

* * *

श्री सिद्ध गुफा की महिमा

लेखक
ब्र० बृजमोहन
वाशिष्ठ

धाम संवाई सा नहीं, नही प्रभुसा नाम
शरण गुरू सी है नहीं, बन्धन कटे तमाम।।१
ध्यान धरें जो नित्य यहाँ, पाँच बजे से सात।
गुरुदेव कृपा करें, भवसागर तर जात।।२
जीवन तत्व अमृत यहाँ, जो पीता नित्य आय।
तन निरोगी मन सुखी, आत्म रूप लखाय।।३
बड़े भाग्य उस जीव के, गुरु शरण पा जाय।
तन मन धन सेवा करे, रोम-रोम हर्षाय।।४
सिद्ध गुफा की रज को, ले मस्तक पर धार।
श्रद्धा से चाटो इसे, मिलते है फलचार।।५
राग द्वेष को छोड़ कर, प्रभु का ध्यान लगाय।
नित्य नियम आसन करो, समुस्त रोग मिट जाय।।६
ध्यान धरो गुरुदेव का, होत दिव्य प्रकाश।
कोटिन कोटि क्लेश का, होता पल मे नाश।।७
भटकत-भटकट क्यो फिरे, जन्मे क्यो बारम्बार।
सिद्ध गुफा दर्शन करो, हो जा भव से पार।।८
सिद्ध गुफा गुरुदेव की, तीन लोक मे एक।
या सम कोई धाम ना, देख सके तो देख।।९
चरण कमल गुरुदेव मे, भाव भक्ति दृढ़ाय।
भवसागर से पा हो, श्री रामलाल गुण गाय।।१०
श्री रामलाल योगेश को, बारम्बार प्रणाम।
गुरु चन्द्रमोहन कृपा करें, पूर्ण हो सब काम।।११
गुरुदेव ही प्रभु राम है, प्रभु ही है गुरुदेव।
दोनों तत्व एक से, जिन ब्रह्मा, विष्णु सेव।।१२
श्री रामलाल योगेश को, महिमा अपरम्पार।
सिद्ध गुफा पर पहुँच कर, अनुभव कर एक बार।।१३

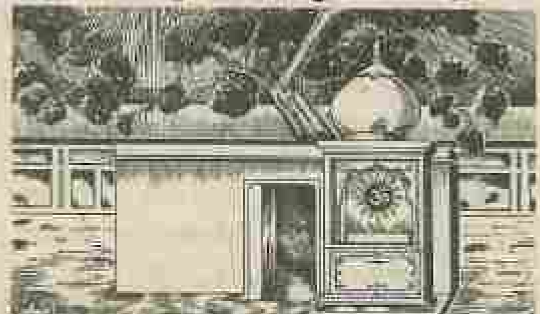

मिटे क्लेश कैसे सभी, कैसे हो बेड़ा पार।
प्रभु रामलाल की शरण जा, सिद्ध गुफा एक बार।।१४
प्रभु रामलाल की शरण में, होते नित्य चमत्कार।
चरण पकड़ गुरुदेव के, समय न कर बेकार।।१५
बचपन खोया खेल में, गयी जवानी बीत।
सिद्ध गुफा आया नहीं, गाये नहीं प्रभु गीत।।१६
निर्धन हो तो भजन कर, धनी हो तो दान।
सेवा से गुरु देव की, पा जा पद निर्वाण।।१७
मेरे मन विश्वास कर, श्रद्धा भक्ति भरपूर।
गुरुदेव सम और ना, क्यों चरणों से दूर।।१८
बृजमोहन तिहुँ लोक में, धाम गुफा-सा नाम।
ज्ञान, वैराग्य, भक्ति मिले, कल्पवृक्ष की छाँव।।१९
बृजमोहन संसार में, दुख-सुख सब को होय।
समर्पित हो गुरुदेव के, निश्चिन्त होकर सोय।।२०
दानों में है दान बड़ा, विद्या दान महान।
एक विद्या दान से, पलता है खानदान।।२१
लेना हो तो नाम ले, देना हो सो दान।
दानों में एक दान है, विद्या दान महान।।२२
यम-नियम आसन करो, करो धारण ध्यान।
गुरु भक्ति मन में बसे, तो पा जा पद निर्वाण।।२३
योगानुष्ठान विधि को, बृजमोहन समझाय।
दो घन्टे का जाप कर, फिर घन्टा ध्यान लगाय।।२४
फिर जाप फिर ध्यान कर, फिर जाप फिर ध्यान।
तीन चार ऐसे करो, होता यही विधान।।२५
अनुष्ठान काल में, रहे अल्पहार और मौन।
एकान्त में वासा करे, जानो हो तुम कौन।।२६
अनुष्ठान से उठकर, चार चपाती खाय।
मन्त्र जाप चलता रहे, जागो या सो जाय।।२७
प्रथम सात दिवस अभ्यास कर, फिर ग्यारह का होय।
इक्कीस, इकत्तीस का करे, पूरा इकतालीस होय।।२८
जब इकतालीस दिन का, हो जाय अभ्यास।
कम से कम एक वर्ष में, निश्चित करें प्रयास।।२९
इस प्रकार अनुष्ठान से, होत दिव्य प्रकाश।
मन मस्त रहता सदा, भरा रहे उल्लास।।३०

तत्वजयी योगी श्री हरिहरानन्द जी महाराज

(बलिराम तिवारी)

श्री हरिहरानन्द जी महाराज तत्वविजयी योगी हैं जो वर्तमान में हिमालय में शीशागिरी पहाड़ पर समाधिस्थ हैं। वे तीन माह में एक बार समाधि से उठते हैं फिर तीन माह के लिये पुनः समाधि में बैठ जाते हैं। तत्वजयी सिद्ध का अर्थ है कि इनका पृथ्वी, जल, वायु एवं आकाश पर पूर्ण अधिकार है। पृथ्वी, जल, वायु एवं आकाश पर पूर्ण अधिकार है। पृथ्वी, जल आदि इनकी इच्छा में किसी भी प्रकार से व्यवधान नहीं बन सकते। इसी से अणिमादि अष्टसिद्धियाँ सदा साथ रहा करती हैं। पञ्चभूतों पर अधिकार होने के कारण उनका यह पाञ्चभौतिक शरीर क्षीण नहीं होता। वे प्रकृति के भण्डार से नये कोशिकाओं का संकर्षण कर अपने शरीर के क्षीण कोशिकाओं की पूर्ति करते रहते हैं, इसलिये वे लोग अमर कहलाते हैं। मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, भृतहरि आदि सिद्ध इसी प्रकार से अमर कहे जाते हैं। आनन्दकन्द श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने किस प्रकार से उन्हें (हरिहरानन्द) को भूतजयी सिद्ध बनाया। इस घटना को हमारे पूज्यपाद गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जैसा बताया करते थे उसका सार संक्षेप में इस प्रकट है– एक बार श्री प्रभु जी घूमते-घूमते बलिया में एक गाँव में पहुँचे। वहाँ निकट में ही किसी महिला के रुदन की आवाज सुनाई दी। श्री प्रभु जी ने अपने किसी भक्त से पूछा– यह रोने की-सी आवाज कैसी आ रही है। इस पर भक्त ने उत्तर दिया– 'यह इस गाँव की ही एक दुश्चरित्रा महिला के रोने की आवाज है। इस गाँव का ही एक सदाचारी बालक इसे प्रताड़ित कर रहा है। यह स्त्री पीटने योग्य ही है इसके आचरण शुद्ध नहीं है। यह गाँव की अन्य भोली-भाली स्त्रियों को भी कुमार्ग पर लगाती है। यह सुनकर श्री प्रभु जी ने उस बालक को अपने पास बुलाकर लाने को कहा-यह बालक श्री प्रभुजी के चरणों में पहुँचा।

श्री प्रभुजी ने उससे पूछा-बेटा ! तुम किस वर्ण में उत्पन्न हो ? उस बालक ने उत्तर दिया– 'महाराज ! मैं ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुआ हूँ।' श्री प्रभु जी ने कहा– 'तुम दान लेते ही हो या दान करते भी हो' ? उस ने कहा–

'महाराज। मैं दान लेता भी हूँ और देता भी हूँ।'

श्री प्रभुजी ने कहा– 'तुम मुझे भी कुछ दोगे ?'

वह बालक कहने लगा– 'महाराज जी ! ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो मेरे पास हो और आपको न दे सकूँ'। श्री प्रभु जी ने कहा– 'अच्छा, यदि ऐसी बात है तो तुम

मुझे अपना सिर दे दो'। ब्राह्मण बालक सहर्ष अपना सिर देने को तैयार हो गया किन्तु उसने इसके लिये तीन दिन का समय माँगा ताकि वह जिसका लेन-देन है उसे पूरा कर सके। श्री प्रभु जी ने उसे तीन दिन का समय दे दिया। तीन दिन के बाद वह अपने हाथ में तलवार लेकर श्री प्रभु जी के चरणों में उपस्थित होकर कहने लगा- 'महाराज! अब मैं आ गया हूँ। अब आप अपनी इच्छा से मेरा सिर काट लें।' वे दोनों जंगल में एक नदी के तट पर पहुँच गये। वहाँ पहुँच कर श्री प्रभु जी ने बालक से कहा- 'अब तुम अपना सिर स्वयं काट कर मुझे दे दो। मैं तुम्हारा सिर नहीं काटूँगा। क्योंकि इससे मुझे ब्रह्महत्या लगेगी।'

वह बालक अपनी तलवार से सिर काटने ही वाला था कि श्री प्रभुजी ने उसका हाथ पकड़ लिया, तलवार छीन ली और उसके दो टुकड़े करके फेंक दिया। इसके बाद उसे कण्ठ से लगा लिया और कहा-'तू आज से तत्व विजयी अजर-अमर सिद्ध हो गया। जब तक चाहेगो इस शरीर को रख सकोगे'। कुछ दिन प्रभु जी ने उसे अपने साथ रखा और बाद में शीशागिर की पहाड़ी पर समाधिस्थ कर दिया।

(श्री हरिहरानन्द महाराज के जीवन वृतान्त की कुछ और जानकारी हमारे गुरु भाई श्री बलिराम तिवारी ने हमारे पास भेजी है इसे साधकों के लाभार्थ हम नीचे प्रकाशित कर रहे हैं। -सम्पादक)

परम योगी श्री हरिहरानन्द जी बलिया जिला के फेफना गड़वार रोड़ स्थित कुर्दीपुर गाँव के निवासी है। आपके पिता जी का शुभ नाम श्री हलीवन्त तिवारी है। आपके पिता जी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। शिव के परम भक्त थे। स्वामी जी महाराज के पाँच भाई थे। भाईयों में इनका दूसरा स्थान था। स्वामी जी का पूर्व नाम श्री हरिहर तिवारी था। सन् १९१८ में अपने ही गाँव के सटे चान्दपुर की एक दुराचारिणी स्त्री को प्रताड़ित करते हुये श्री प्रभु जी के दर्शन हुये व उनकी चरण-शरण ले ली। एक साल बाद एक दिन अपने घर पर आये किन्तु रुके नहीं। जाते हुये यह बात कह गये कि आप लोग मेरा अन्तिम संस्कार नहीं करेंगे, मुझे फिर वापिस नहीं आना है। ऐसा कहकर वे चले गये और आज तक फिर वापिस नहीं लौटे। सभी तथ्यों के साक्षीरूप में उनके समवयस्क श्री यमुनासिंह ग्रा० चान्दपुर कुर्दी के हैं। इस समय उनकी आयु लगभग १०० वर्ष की है सभी घटनाओं की सत्यता को जानने के लिये उनसे पूछताछ की जा सकती है। इस घटना के बारे में कुर्दीपुर के सभी पुराने लोगों ने सुन रखी है। कर्ण परम्परा से ये घटनायें आज भी श्रुति गोचर हैं।

***

जून अंक से आगे–

श्री गुरुदेव जी की कृपापात्र श्रीमती सुशीला देवी

राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

पूज्य गुरुबहिन श्रीमति सुशीला देवी जिन्हें मैं बचपन से ही माताजी कहकर सम्बोधित करता हूँ तथा श्री सिसोदिया साहब (श्री डी. एस. सिसोदिया रिटायर्ड जेल अधीक्षक) को बाबूजी कहकर। श्री सिसोदिया परिवार से सम्बन्धित, श्री प्रभुजी के अद्भुत कृपामय घटनाक्रमों को मैं आप तक पहुँचा सका ये सब श्री गुरुदेव की महान कृपा से ही सम्भव हो सका है। अधिकांश गुरुभाई-बहिनों से, इन घटनाओं को लेकर अनुकूल प्रतिक्रियायें प्राप्त हुई हैं। जो मेरे हृदय में उठे भावपूर्ण बादलों में सम्मिलित होकर, मेरे उत्साह वर्द्धन हेतु, एक उत्प्रेरक के रूप में पूर्णतः सक्षम सिद्ध हो रही हैं। साथ ही आनन्द कन्द श्री महाप्रभुजी तथा श्री गुरुदेव भगवान के पावन चरित्रों के गुणानुवाद के इस पुनीत कार्य में निरन्तर जुड़े रहने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। इस लेख के शेषांश को मैं समय से प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा हूँ, सिद्धयोग के समस्त पाठकों से इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। आगे की घटनायें निम्न प्रकार से हैं।

ज्येष्ठ पुत्र के क्लिष्ट संस्कार का सूक्ष्मरूप में भुगतान

एक बार माताजी को ध्यानावस्था में श्री गुरुदेवजी की परमवाणी सुनाई पड़ी कि तुम्हारे बड़े पुत्र दिनेश पर शीघ्र ही बहुत भारी कष्ट आने वाला है। आगे गुरुदेवजी ने माताजी को आदेश दिया कि २१ दिन तक शुद्ध घी की अखण्डज्योति श्री प्रभुजी को समर्पित करो तथा १०१ (एक सौ एक) ब्राह्मणों को भोजन करा दो। ऐसा करने पर इस क्लिष्ट संस्कार का भुगतान होता चला जायेगा। श्री गुरुदेव के इस चेतावनी पूर्ण आदेश को सुनकर माताजी के हृदय में, पुत्र ममत्व के कारण, अत्यन्त वेदना हुई। लेकिन तुरन्त ही सामान्य स्थिति में आ गईं। माताजी ने विचार किया कि जब अकारण दयालु श्री गुरुदेव भगवान को मेरे बच्चों की मुझसे कहीं ज्यादा चिन्ता है, तो मुझे अपने परिवार के प्रति किसी भी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती है। बस किसी प्रकार गुरुदेव की आज्ञा का पालन कर लिया जाय। माताजी को श्री महाप्रभुजी की आरती में गाये जाने वाली निम्न पंक्तियों का बार-बार स्मरण होता था।

पिता से माता सौ गुना करती सुत सों प्यार।
माता से हरि सौ गुना हरि से गुरु सौ बार।।

सचमुच, कितनी सच्चाई छिपी है उपरोक्त आरतीखण्ड में ! एक अवसर पर श्री गुरुदेवजी ने गुरुधाम में अपने एक अति चिंतित शिष्य से कहा था लल्ला ! "तुम क्यों

अपने विषय में चिन्ता करते हो ?" तुम लोगो की चिन्ता तो मुझे तुम से पहले रहती है। तुम्हें तो श्री प्रभुजी (श्री रामलालजी महाराज) का ध्यान करते हुये अपने गुरुमंत्र का जाप करते रहना है, करुणानिधान प्रभुजी सब प्रकार से ठीक ही करेंगे। इस प्रकार गुरुदेव जी, अति स्नेह और मधुर शब्दो से अपने पीड़ित बच्चों को साँत्वनाऐं दिया करते थे। धीरे-धीरे उनके कष्टों का निवारण करते हुये उन्हें योगमार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया करते थे।

उन दिनों माताजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री दिनेश भाई जी, उनके विभाग में कार्यरत S.O. जो कि ब्राह्मण जाति के है, से अच्छे पारिवारिक सम्बन्ध थे। एक दिन होली पर्व पर, दिनेश भाई जी की पत्नी श्रीमति अरुणा होली मिलने उनके घर पहुँची। उनके घर पर एक मुसलमान फकीर आये हुए थे। उनकी दृष्टि जैसे ही अरुणाजी पर पड़ी तो उन्होंने एस.ओ. साहब की धर्म पत्नी जी को सम्बोधित करते हुये कहा कि इनके पति पर एक भारी कष्ट आने वाला है। गुरुदेव बतलाया करते थे कि मुसलमानों में भी आध्यात्मिक क्षेत्र में अच्छी स्थिति को प्राप्त लोग हुआ करते है। किन्तु केवल वही जो संयम से रहते है पवित्रता से रहकर खुदा (ईश्वर) का चिन्तन निष्काम भाव से किया करते है। मांस-अण्डे आदि खाने वाले नही क्योंकि अपवित्रता में शक्ति आती ही नहीं है।

जो मुसलमान भाई मांस-अण्डे खाकर असंयमित जीवन जीते हुये भी ऐसे कार्य करते है उनके पास अपनी कमाई हुई शक्ति नही होती वे भूतप्रेतों को सिद्ध करके उनके सहयोग से इस प्रकार के कार्य कर दिया करते है। किन्तु इसमें भूत-प्रेतों से संस्कार बन जाने के कारण इनकी सिद्धी करने वाले घोर पतन को प्राप्त होते है। तंत्र-मंत्र साबर मंत्रों का प्रयोग यदि परोपकार की दृष्टि से किया जाय तब तो उचित है, किन्तु इन मंत्रों का दुरुपयोग करके तांत्रिकों की बड़ी दुर्दशा होती है। 'तंत्र' ही इनके महाविनाश के उदाहरण स्वरूप है। अन्त में निकृष्ट योनियों को प्राप्त होते है ये लोग। मेरा सभी से निवेदन है कि इस प्रकार की साधनाओं के चक्कर में कभी न पड़ें। अपना योग मार्ग ही परम श्रेष्ठ है जिसके अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने वाला परम् सौभाग्यशाली साधक स्वयं ईश्वरत्व को ही प्राप्त हो जाता है।

कुछ दिनों पश्चात्, फकीर द्वारा कही गई बात, S.O. साहब की पत्नी ने संकोच करते हुये श्री दिनेश जी को बतलायी। संकोच इसलिए उन्हें सन्देह था कि इस प्रकार की बातों में वे कहीं विश्वास न करते हों। जब श्री दिनेश भाईजी ने रुचि दिखलायी तो उन्होंने कहा कि यदि आप चाहे तो इन फकीर मौलवी जी से सम्पर्क करके, अपने इस सम्भावित कष्ट का समाधान करा सकते है। माताजी को जब इस बात से अवगत कराया गया तो उन्होंने उन फकीर मौलवी साहब को अपने घर पर ही बुलवा लिया।

वह फकीर थोड़ी देर चुपचाप बैठा रहा, फिर बोला आपके गुरुदेव तो खुदा है। क्लिष्ट संस्कारों का कटना उसी दिन से शुरू हो गया है, जिस दिन से अखण्ड ज्योति जलाई गई है। भारी कष्टों का भुगतान सूक्ष्म रूप में बराबर हो रहा है। अल्लाह की महरबानी से चन्द रोज में ही ये स्वस्थ हो जायेंगे। दिनेश भाईजी ने मामूली सा संकट अपने शरीर पर महसूस किया था, गुरुदेव की महान कृपा से उनका संकट अब बिल्कुल कट सा चुका था। केवल ज्योति के प्रज्वलित करने मात्र से यह दिव्य प्रभाव सामने आया, अभी १०१ ब्राह्मणों को भोजन कराना शेष रह गया था।

एक सौ एक ब्राह्मणों को भोजन कराने की व्यवस्था मे बड़ी मुश्किल आ रही थी। इसी बीच मे श्री दिनेश भाईजी का स्थानान्तरण बुलन्दशहर हाइडिल पुलिस मे हो गया। इसके बाद समय कुछ ऐसी विषम परिस्थितियों से गुजरा कि धीरे-धीरे दो वर्ष बीत गये किन्तु ब्रह्मभोज का योग नही बन सका। इधर दिनेश भाई जी चाहते थे कि उनका ट्रांसफर पुनः सिविल पुलिस मे हो जाये। इसके लिये वे काफी प्रयत्न कर रहे थे लेकिन उन्हें सफलता नही मिल पा रही थी। माताजी व पिताजी श्री गुरुदेव जी से इस विषय में निरन्तर निवेदन करते रहते थे। एक दिन ऐसा आया कि गुरुदेव की प्रेरणा से सभी ब्राह्मणो की व्यवस्था हो गई और ब्रह्मभोज कराने की तारीख भी निश्चित करली गई। एक दिन आरती के उपरान्त माताजी को गुरुदेव की वाणी सुनाई दी कि जिस दिन तुम ब्रह्म भोजन कराओगी उस दिन तुम्हे एक खुशी का समाचार प्राप्त होगा। निर्धारित तिथि पर ब्रह्मभोज कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। माताजी की बड़ी लड़की भी इस कार्यक्रम मे सपरिवार सम्मिलित हुई थी। उसी दिन बाहर से दो व्यक्ति आये थे उनका दिल्ली तथा जर्मनी मे अच्छा कारोबार है। इन लोगो को अपनी लड़की के लिए माताजी की बड़ी लड़की का लड़का पसन्द आ गया और उसी दिन शादी की बात भी पक्की हो गयी। माताजी ने सभी से कहा कि गुरुदेव ने ऐसा कहा था कि आज कोई खुशी सुनने को मिलेगी। ये रिश्ता तय होने से गुरुदेव की वाणी सच हो गई। बाबूजी (श्री सिसोदिया जी) कहने लगे, ये खुशी हमारे घर से सम्बन्धित तो है नही हमें इस खुशी से क्या लाभ ? अगर हमारे दिनेश का ट्रांसफर सिविल पुलिस मे हो जाता तब तो हम समझते। माताजी के हृदय को यह सुनकर बहुत कष्ट पहुँचा, वे मन ही मन गुरुदेव का स्मरण करने लगी। ठीक तीन घण्टे बाद उसी दिन टेलीफोन पर समाचार मिला कि दिनेश जी का ट्रांसफर सिविल पुलिस मे हो गया है। यह समाचार पाकर घर मे एकदम खुशी की लहर दौड़ गयी। सभी लोग अचम्भित थे, ओर माताजी चुपचाप गुरुदेव के स्मरण मे गहरी डूबती जा रही थी।

-: अखण्ड ज्योति की पवित्रता हेतु आवश्यक सावधानियाँ :-

उपर्युक्त लेख से हमने यह अनुभव किया कि महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज को अखण्ड ज्योति समर्पित करने से संकटों से स्वाभाविक मुक्ति मिलती है। साथ ही साथ एक और विशेष लाभ होता है जब हम श्री प्रभुजी को ज्योति का दान करते हैं तो प्रत्युत्तर में श्री प्रभुजी हमें ज्ञान प्रदान करते हैं। प्रायः सभी गुरु भाई-बहिन श्री प्रभुजी को अपनी श्रद्धानुसार ग्यारह दिन की, इक्कीस दिन, एकवर्ष अथवा इससे भी ज्यादा के लिए, अखण्ड ज्योति समर्पित करते हैं। अखण्ड ज्योति समर्पित करना अति श्रेष्ठ कार्य है किन्तु इस कार्य में कुछ सावधानियाँ अति आवश्यक रूप से अपेक्षित है। श्री प्रभुजी तथा श्री गुरुदेव जी को ज्योति समर्पित करने से पहले ज्योति की पवित्रता पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। साधकों के लिए अखण्ड ज्योति के सम्बन्ध में निम्न लिखित सावधानियाँ अनुकरणीय है :-

१-अखण्ड ज्योति को प्रज्जवलित करने वाले साधक को हर प्रकार से पवित्र रहना चाहिए। जितनी बार ज्योति के पात्र में घी समर्पित करने की आवश्यकता पड़े उतनी ही बार इस कार्य को करने से पहले साधक को स्नान अवश्य कर लेना चाहिए। ताकि यदि किसी प्रकार अनजाने में अपवित्र हो गये हो तो स्नानोपरान्त अपवित्रता का दोष न रहे।

२-अखण्ड ज्योति का दान करने वाले साधक को घर में उपस्थित मासिक धर्म से ग्रसित महिलाओं से तथा घर से बाहर अण्डा, मांस-मछली खाने वाले तमोगुण प्रधान सम्प्रदायों के लोगों से अथवा अपवित्र वर्ण के लोगों से स्पर्श नहीं करना चाहिए। यदि किसी परिस्थिति विशेष में ऐसा हो जाए तो तुरन्त स्नान कर लेना चाहिए।

३-अखण्ड ज्योति के प्रयोग में लाई गई रुई (कपास) की पवित्रता पर भी ध्यान देना चाहिए यह पवित्र स्थान से खरीदी गई हो।

४-घी के विषय में विशेष सावधानी बर्तनी चाहिए। घी एकदम पवित्र होना चाहिए। गाय के घी का प्रयोग करना अति उत्तम है। घी में किसी प्रकार मिलावट नहीं होनी चाहिए। घी खरीदने से पहले यह स्मरण रखना चाहिए कि दुकान किसी ब्राह्मण अथवा सवर्ण की ही हो।

५-कुटुम्ब में किसी को बालक पैदा होने पर अथवा किसी की मृत्यु होने पर जब तक घर में शुद्धि न हो जाये तब तक के लिए ज्योति को बीच में ही रोक लेना चाहिए। शुद्धि होने पर पुनः प्रज्जवलित कर सकते हैं।

६- ज्योति समर्पित करने की पूर्ण निर्धारित अवधि में ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्णरुपेण पालन करना चाहिए।

७- ज्योति समर्पित करने के दिनों में यदि साधक को असमय दीर्घशंका अथवा

लघुशंका हेतु शौचालय मे जाना पड़े तो उसे लौटने पर तुरन्त स्नान कर लेना चाहिए तथा अपवित्र वस्त्रों को उतार कर धुले हुये दूसरे वस्त्र धारण करना चाहिए।

८- घर-परिवार मे बहुत छोटे बच्चों के होने पर अथवा बहुत ही वृद्ध रोगी परिवारीजन के होने पर घर मे प्रायः मल-मूत्र युक्त वातावरण बना रहता है। शारीरिक शिथिलता को प्राप्त अति वृद्धावस्था मे लोगों को अपने मल-मूत्र उत्सर्जन पर नियन्त्रण नही रहता- वे घर मे असमय किसी भी स्थान पर गन्दगी कर देते है। छोटे बच्चे भी चाहे जहाँ मल-मूत्र कर देते है, कई बार गोद मे लेने पर वस्त्र खराब कर देते है। बच्चे तथा अतिवृद्ध रोगी लोगों के सोने के बिस्तर प्रायः अशुद्ध ही रहते है। इन सबसे ज्योति समर्पित करने वाले साधक को अपनी सुरक्षा रखनी चाहिए। वैसे इस प्रकार की परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर ज्योति समर्पित न करना ही श्रेष्ठ है।

९-प्रत्येक परिवार में जलोपलब्धि के लिए कुछ न कुछ साधन अवश्य होता है, हैण्डपाइप, सरकारी पाइप लाइल वाले नल, जैटपम्प तथा कूआं आदि। साधक को जल के इन साधनों की पवित्रता बनाये रखने मे विशेष रुचि दिखलानी चाहिए। दीर्घशंका अथवा लघुशंका उपरान्त पीने वाले तथा स्नान करने वाले जल के साधनों पर शौच आदि के गन्दे हाथ नही धोने चाहिए। इसके लिए ताकि साधक को पीने के लिए तथा स्नान के लिए पवित्र जल प्राप्त हो सके।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो कूओं का जल ही पवित्र माना जाता है। श्री गुरुदेव भगवान जब बाहर प्रोग्रामों मे जाते थे तो अपने साथ अपने जल की व्यवस्था रखते थे। जल समाप्त होने पर गुरुदेव शहरों मे कूओं का पता करवाते थे फिर वहाँ से पवित्र जल प्राप्त किया जाता था। कूआँ भी उपलब्ध न होने पर (रेलवे स्टेशन आदि पर) जन सेवा हेतु सार्वजनिक नलों की अपवित्रता दूर करने के लिए उन नलों को अग्नि दिखाकर पवित्र करा लिया करते थे तब उस नल के जल का इस्तेमाल करते थे वो भी केवल अपने हाथ-पैर धोने में।

१०-अखण्ड ज्योति मे समर्पित करने के लिए घी यदि किसी परिचित व्यक्ति के घर से अथवा पड़ोसी आदि से खरीदें तो इस बात का पता अवश्य लगा लेना चाहिए कि उस घर की महिला ने पाँच दिन की होने वाली अशुद्धि मे घी तैयार न किया हो। यदि ऐसा ही हुआ है तो वह घी अपवित्र समझा जायेगा। यदि घी देशी गाय का हो और स्वयं के ही हाथों से तैयार किया गया हो तो सर्वोत्तम है।

घी की अपवित्रता के सम्बन्ध में उदाहरणस्वरूप एक लघु घटना प्रस्तुत कर रहा हूँ- मेरे मामाजी श्री रामबाबू श्रीवास्तव इटावा में रहते है महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के पावन चरणों मे उनकी अनन्य निष्ठा है। छः माहपूर्व उन्होंने मौहल्ले ही की एक

महिला से कुछ शुद्ध घी का प्रबन्ध किया इस घी का प्रयोग वे श्री प्रभुजी की दोनों वक्त की आरती में किया करते थे। कुछ दिनों के बाद धीरे-धीरे मामाजी की तबियत खराब होने लगी और पूरा परिवार ही रोगग्रस्त हो गया। दो महीने में बीमारियों में काफी पैसा उठ गया किन्तु कोई फायदा नहीं हुआ। संकट के समय श्री प्रभुजी का चिन्तन स्वाभाविक ही होता है। एक दिन मामाजी पर श्रीप्रभुजी की दया दृष्टि हो गई उन करुणनिधान कृपानिकेतन के अनुग्रहस्वरूप उस दिन ब्रह्ममुहूर्त में प्रातः चार बजे भक्तवत्सल गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने उन्हें स्वप्नावस्था में अपने दर्शन दिये और कहा, "लला! श्री प्रभुजी के आरती-पूजन में प्रयोग किया जाने वाला घी रजस्वला महिला के द्वारा झूठा करके तैयार किया गया है यह घी अपवित्र है इसे पूजा की अलमारी से उठाकर फैंक दो। मामाजी ने उसी दिन उसके स्थान पर नये शेष घी को निकलवाकर फिकवा दिया उसके स्थान पर नये शुद्ध घी का प्रबन्ध किया। गंगाजल से पूरी अलमारी को धोया। पुनः पवित्रता का वातावरण बनने पर समस्त परिवारीजन धीरे-धीरे स्वस्थ हो गये।

उक्त लघु घटना से एक प्रश्न उठता है क्या श्री प्रभुजी साधक की बाह्य तथा आन्तरिक अपवित्रता होने पर वे उसे दण्ड दिया करते हैं ? ऐसी बात कदापि नहीं है श्री प्रभुजी न किसी को दण्ड देते है न किसी से नाराज होते है। प्रभुजी तो अनन्त आनन्द की खान हैं। जो सदैव अपने बच्चों के कल्याणार्थ तत्पर रहते हैं। दरअसल सत्य बात यह है कि पवित्रता का स्वाभाविक धर्म सुख प्रदान करना तथा अपवित्रता का स्वाभाविक धर्म दुःख प्रदान करना है।

नित्य श्री प्रभुजी की आरती करने से मंत्र जाप अनुष्ठान आदि करने से श्री प्रभुजी के स्वरूपों के आस-पास श्री प्रभुजी के दिव्य परमाणु व्याप्त हो जाते हैं। क्योंकि जिस घर में भी श्री प्रभुजी तथा श्री गुरुदेव भगवान की आरती होती है उस पवित्र स्थान पर वे दोनों अपने सूक्ष्म शरीर से प्रकट होते है इसी कारण वहाँ उनके दिव्य परमाणु व्याप्त हो जाते है उन दिव्य परमाणुओं के प्रभाव से घर में पवित्रता व्याप्त रहती है। जिसमें रहने वाले लोग निरन्तर पवित्र होते रहते है। और आरोग्य को प्राप्त है।

मनुष्य के शरीर में जिस प्रकार, सूक्ष्म षट्चक्रों की स्थिति है उसी प्रकार से शरीर में एक कर्माशय भी सूक्ष्मावस्था में अवस्थित रहता है। इस कर्माशय में प्राणीद्वारा किये गये अनेक जन्मों के शुभाशुभ कर्म प्रारब्ध बनकर सम्मिलित रहते है। कर्माशय रूपी एक ही पात्र में होने पर भी ये परस्पर **'विपरीत कर्म युग्म'** मिश्रण न बनकर, प्रथक-प्रथक अवस्था में रहते है। स्वाभाविक रूप से इन शुभाशुभ कर्मों का परिपाक होना एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है। शुभाशुभ कर्मों के परिपाक हो जाने पर शुभकर्म युक्त कर्माशय अपने शुभाशुभ अर्थात् सुख को प्रकट करता है और अशुभकर्मयुक्त कर्माशय अपने अशुभफल अर्थात् दुःख को प्रकट करता है। संसार का प्रत्येक प्राणी अपने-अपने कर्माशयानुसार प्राप्त होने

वाले सुख-दुख की जंजीर में बँधा हुआ है। सुख-दुख रूपी भोगों को भोगने के लिए मनुष्य को बार-बार जन्म लेना ही पड़ता है इसी को सांसारिक बन्धन कहा जाता है, माया का बन्धन कहा जाता है। इस बन्धन से मुक्त होना ही 'मोक्ष' है। इसीलिए विवेकी पुरुष न दुख को पसन्द करते है न सुख को वे सुख-दुख से परे ईश्वरीय परमानन्द को प्राप्त करने के लिए योग को अपना लिया करते है।

शुभाशुभ कर्मों के शीघ्रातशीघ्र परिपाक होने का एक नियम है कि शुभकर्म कर्माशय के परिपाक होने के लिए पवित्र भूमि चाहिए तथा अशुभ कर्मों के लिए अपवित्र भूमि चाहिए। पुण्य कर्मों से प्राणी पवित्र भूमि वाला तथा पापकर्मों से अपवित्र भूमि वाला बन जाया करता है। इसीलिए योगी अपने बच्चों को पाप जनित अर्थात् अपवित्रता उत्पन्न करने वाले कर्मों को स्थिर रखते हुये, पुरुषार्थ द्वारा पुण्यजनित अर्थात् पवित्रता में वृद्धि करने वाले कर्मों को करते रहने की प्रेरणा सदैव देते रहते है। इससे दो लाभ होते है- पुण्यों में उत्तरोत्तर वृद्धि होने पर, कर्माशय में पड़े शुभकर्मों का परिपाक अतिशीघ्र होने से शुभफल की सुखानुभूति शीघ्रता से हो जाती है। दूसरी बात यदि कोई अशुभ कर्म अपनी स्वाभाविक गति से दुःख परिणाम लेकर आ रहा है तो हमारे द्वारा कमाये पुण्यों से बनी पवित्रता उसके प्रभाव को क्षीण कर देती है और सूक्ष्म रूप में उसका भुगतान कराकर अनिष्ट होने से बचा लेती है। इस प्रकार साधक पुण्यों की उत्तरोत्तर वृद्धि से दिव्यता (शक्ति) को प्राप्त करता चला जाता है और यही योग उसको आगे उच्चकोटीय यौगिक उपलब्धियों को प्राप्त कराने में सहायक होता है। संसार के प्राणी द्वारा अनुभूत सुख-दुख विभिन्न प्रकार के होते है अतः एक बात और ध्यान देने की है कि कर्माशय में विद्यमान शुभाशुभ कर्म संस्कार, प्राणी के पूर्व जन्मों के कर्मानुसार, सुख-दुख में बंधे रहते है, परिपाक होने पर उसी प्रकार सुख-दुख प्राणी को प्राप्त हुआ करते है। सुख-दुख प्राणी को अनिवार्य रूप से भोगना होता है। अतः सामान्यतः समाज में कह दिया जाता है 'जो होना होता है वह होकर रहता है।' 'कर्माशय और भोग' एक व्यापक विषय है। प्रत्येक योग जिज्ञासु को इसे भलीभाँति समझ लेना चाहिए। यहाँ पर मेरा लक्ष्य केवल श्रीप्रभुजी को समर्पित की गयी अखण्ड ज्योति अथवा सामान्य ज्योति की बाह्य अपवित्रता से, बीमारियों के रूप में शरीरिक रुग्णता को प्राप्त करने के कारण सिद्धान्त को स्पष्ट करना है।

पंतजलि योगदर्शनानुसार दुःख के विविध रूपों ताप दुःख, संस्कार दुःख, सहज दुःख, गुणवृत्ति-विरोध दुःख आदि की व्याख्या में हम यहाँ पर सहज दुःख पर विचार करेंगे। सहज दुःख का ही दूसरा नाम आध्यात्मिक दुःख है। इस दुःख का सम्बन्ध शरीर और मन दोनों से ही होता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है कि आध्यात्मिक कार्यों को अपवित्र वातावरण में सम्पन्न करने से तथा आध्यात्मिक कार्यों में संलग्न लोगों के

साथ दुर्व्यवहार करके, धर्म की आड़ मे अधर्म को बढ़ावा देने से मन मलिन होता है और सहज दुःख की प्राप्ति होती है।

अखण्ड-ज्योति को अपवित्र करने वाले जो दस ब्रिन्दु ऊपर वर्णित किये गये यही शरीर को अपवित्रता प्रदान कराने वाले बाह्य कारण है। सन्त-महात्मो का अपमान करना धार्मिक लोगो की तपश्चर्या आदि मे व्यवधान पैदा करना, ईश्वर भक्ति को धनोपार्जन का साधना बनाना, धर्म का सहारा लेकर विश्व मे अर्धम को स्थापित करना, धन के घमण्ड मे आकर ईश्वर पर विश्वास न करना तथा उनके ऐश्वर्य के प्रति दुर्वचन बोलना। गऊ हत्या करना, मांस-अण्डा, मदिरापान करते हुये ईश्वर की सकाम भक्ति करना, अपने उदरपालन हेतु धार्मिक ग्रन्थो एवं मुर्तियो को उच्चतम मूल्यों पर बेचना आदि मन तथा शरीर को अपवित्र करने वाले आन्तरिक कारण है। मन तथा शरीर को अपवित्र करने वाले यूं तो असंख्य कारण है किन्तु यहाँ 'सहज दुःख' को प्रदान होने वाले सामान्य रोग जुकाम, खाँसी, ज्वर, अतिसार, फोड़े-फुन्सी आदि है। तथा अपवित्रता के आन्तरिक कारणों के परिणाम स्वरूप प्राप्त होने वाले सहज दुःख के अन्तर्गत प्रकट होने वाले क्लिष्ट रोग दमा, तपेदिक, हिस्टीरिया तथा कैसर आदि है। उपर्युक्त रोगो को शरीर पर भोगना पड़ता है और मन को पीड़ा सहनी पड़ती है। रोगों के समाप्त होते ही अपवित्रता भी समाप्त हो जाती है मन की शुद्धि हो जाती है। आपने अनुभव किया होगा कि बहुत तेज ज्वर जब ठीक होने लगता है तब उस ज्वर की विदाई के ठीक बाद मे मन मे बड़ी एकाग्रता बनती है शुभ तथा ज्ञानमय विचार बार-बार आते है। यह मन के पवित्र होने का ही कारण है।

अखण्ड-ज्योति के प्रकाश पुञ्ज से उत्सर्जित आक्सीजन के परमाणु यदि किसी बाह्य कारण से अपवित्र हो जाते है तो वे स्वयं को श्री प्रभुजी के दिव्य परमाणुओ मे विलय नही कर पाते क्योंकि जिस प्रकार दिन मे रात नहीं विलय हो सकती और रात मे दिन नही विलय हो सकता इसी प्रकार से पवित्रता, अपवित्रता मे विलय नही हो सकती तथा अपवित्रता, पवित्रता मे। अथवा यूँ भी कह सकते है। कि पवित्रता के मार्ग मे अपवित्रता बाधक है तथा अपवित्रता के मार्ग मे पवित्रता। घर मे निरन्तर अपवित्र हुई अखण्ड ज्योति के प्रज्ज्वलित होने से उसके अपवित्र आक्सीजन परमाणु साधक के घर मे सर्वत्र व्याप्त होकर घर मे उपस्थित समस्त वायु को अपवित्र कर देते है। उस क्षेत्र मे रहने वाले लोग, उस अपवित्र वायु का जब नासिका द्वारा सेवन करते है तो साधक के परिवार के समस्त सदस्यो के अन्तःकरण मे अपवित्र परमाणु प्रवेश कर जाते है।

शास्त्रमतानुसारः-

यत्र मनोलीयते तत्र प्राणोलीयते।
यत्र प्राणोलीयते तत्र मनोलीयते।।

प्राण और मन का अभिन्न सम्बन्ध है मन के लय होने पर प्राण स्वतः ही लय हो जाता है और प्राण लय होने पर मन स्वतः हो लय हो जाता है। ये सिद्धान्तगत तथ्य है। शरीर में प्राणों की गति का नियन्त्रण वायु से होने के कारण प्राणों का वायु से बेजोड़ सम्बन्ध है। अखण्ड-ज्योति से उत्पन्न अपवित्र ऑक्सीजन परमाणु शरीर में प्रवेश कर प्राणों को स्पर्श करते हैं प्राणों का शरीर की समस्त नस- नाड़ियों से सम्बन्ध होता है अतः प्राण तथा नस-नाड़ियों में बहने वाला रक्त दोनों, अपवित्र परमाणुओं के प्रभाव से, दूषित हो जाते हैं। परिणामस्वरूप साधक का अन्तःकरण अपवित्र हो जाता है। ठीक इसी प्रकार से पवित्रतापूर्ण वातावरण में जब ज्योति श्री प्रभुजी को समर्पित की जाती है, शुद्ध ज्योति से उत्सर्जित ऑक्सीन के परमाणु श्री प्रभुजी के तथा गुरुदेव जी के दिव्य परमाणुओं के स्पर्श में आकर पवित्र हो जाते हैं। बड़ी शक्ति छोटी शक्ति को अपने में विलय कर लेती है, इस सिद्धान्तानुसार श्री प्रभुजी के दिव्य परमाणु जब अखण्ड-ज्योति अथवा सामान्य ज्योति से प्राप्त आक्सीजन के पवित्र परमाणुओं के साथ सम्मिलित होकर साधक के अन्दर प्रवेश करते है तो साधक के परमाणु भी दिव्य हो जाते हैं और अन्तःकरण में सर्वत्र पवित्रता व्याप्त हो जाती है शरीर में पवित्र भूमि का निर्माण होते ही, कर्माशय में दबे शुभकर्म संस्कारों को अपने अनुकूल वातावरण मिल जाता है। और उनका तेज गति से परिपाक होने लगता है परिपाक होते ही उनका भोगकाल भी शीघ्रता से उपस्थित हो जाता है, जिसके अन्तर्गत साधक को प्रारब्धानुसार मिलने वाले सुख की अनुभूति होती है। कर्माशय परिपाक होकर शीघ्रताशीघ्र साधक को कष्ट देने के लिए आ रहा हो तो अन्तःकरण में व्याप्त पवित्रता उस तमोगुणी कर्मफल के मार्ग में रुकावट बन जाती है अर्थात् पवित्र परमाणु, उस तमोगुण प्रधान अशुभ कर्म संस्कार के परमाणुओं को नष्ट करके उससे मिलने वाली पीड़ा को भी नष्ट कर देते है। सूक्ष्म रूप में साधक को उस पीड़ा का भुगतान कराकर उस अनिष्टकारी संस्कार को सदैव के लिए समाप्त कर देते है। इस सिद्धान्त के अनुसार ही, माताजी श्रीमति सुशीला जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री दिनेश जी को प्राप्त होने वाले क्लिष्ट संस्कार का २१ दिन की पवित्रता पूर्वक अखण्ड-ज्योति प्रज्वलित करवाकर, सूक्ष्म भुगतान श्री गुरुदेव भगवान ने अपनी करुणानुकम्पा से करा दिया था। यही कारण सिद्धान्त मेरे मामाजी के परिवार के अस्वस्थ होने में लागू होता है। अशुद्ध घी से श्री प्रभुजी का आरती पूजन करने से घर में अपवित्रता हो गयी और सभी के अन्तःकरण दूषित हो गये। अपवित्र भूमि मिलते ही अशुभ कर्मों का परिपाक अतिशीघ्रता से होने लगा। दुःखमूलक अशुभ कर्म बड़ी आसानी से अपने कर्माशय को त्यागकर शरीरों पर 'सहज दुःख' रूपी बीमारियाँ लेकर प्रकट हो गया फलस्वरूप दो महीने में धीरे-धीरे समस्त परिवार बीमारियों की चपेट में आ गया। (क्रमशः)

योगधर्म के आदिगुरु योगेश्वर श्रीकृष्ण

ब्र० ओमप्रकाश (लखनऊ)

संसार के समस्त आध्यात्मिक ग्रन्थों का साररूप और सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ श्रीमद्भगवतगीता है। गीता का प्रधान विषय योग है। इसीलिए गीता के प्रत्येक अध्याय का नाम योग से जोड़ा गया है। विषाद योग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यान योग, भक्तियोग, विभूति-योग आदि विभिन्न नाम हैं। गीता का प्रतिपाद्य विषय गीताकार महर्षि वेद व्यास जी ने योग ही बताया है यथा-

"इति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु....................योग शास्त्रो"

(पुष्पिका वाक्य) और संञ्जय भी इस बात की पुष्टी करते हुए कहते हैं-

"व्यास प्रसादाच्छ्रुत वानेतद गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्"।

अर्थात्-संजय ने कहा, "कि श्री व्यासजी की कृपा से दिव्य दृष्टि द्वारा मैंने इस परम रहस्य युक्त गोपनीय योग को अर्जुन के प्रति कहते हुए स्वयं योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण से प्रत्यक्ष सुना है।"

विवेक दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक अध्याय में एक योग-सूत्र है जिसके कारण अध्यायों के साथ योग शब्द का प्रयोग किया गया है। योग सूत्र होने के कारण ही प्रत्येक अध्याय का नाम योग पड़ा। यदि वह योग सूत्र न होता तो केवल विषाद-कर्म, ज्ञान, भक्ति आदि नाम ही होते। यह योग-सूत्र होने के कारण ही प्रत्येक अध्याय का नाम विषाद-योग, ज्ञान-योग, भक्तियोग, कर्म-योग आदि पड़ा। वह कौन सा योग है ? भगवान श्रीकृष्ण योगेश्वर क्यों कहलाते हैं ? और जिस योग धर्म के पुनरुत्थान के लिए निराकार ब्रह्म को साकार रूप में प्रगट होना पड़ता है, वह योग कौन सा है ? इन सब विषयों का स्पष्टीकरण गीता के चतुर्थ अध्याय में निम्नलिखित श्लोकों से हो जाता है यथा-

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान हमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स काले नेह महता योगो नष्टः परंतपः।।
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।

(गीता-१-२-३/४)

अर्थात्–श्री कृष्ण भगवान बोले–"हे अर्जुन ! मैंने इस अविनाशी योग को कल्प के आदि में भगवान सूर्य नारायण के प्रति कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा। इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना, किन्तु उसके बाद बहुत काल व्यतीत हो जाने के कारण वह परंपरा लुप्त प्रायः हो गई यह उसी अविनाशी पुरातन योग तत्त्व का रहस्य मैंने तुमसे कहा है; क्योंकि तुम मेरे परम प्रिय योग विद्या के अधिकारी शिष्य हो। इसलिए पूर्ण श्रद्धा और प्रेम के साथ पूर्ण मनोयोग से मेरे द्वारा उपदिष्ट इस साध्य-साधना परम गोपनीय योग रहस्य को तुम ग्रहण करो। यह अति उत्तम रहस्य सम्पूर्ण मानवीय साधना का गुह्यतिगुहि सारतत्त्व तुम्हारे सामने व्यक्त कर रहा हूँ। तुमको अवलम्ब करके यह सनातन योग रहस्य फिर मानव समाज में प्रचारित होगा; तथा मानव की मानवता को यह योग सार्थक करेगा।"

उपर्युक्त वाक्यों से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो गई कि इस योग विद्या के आदि आचार्य योगेश्वर श्रीकृष्ण ही है। अब आगे बताते हुए कहते है– "हे अर्जुन ! मानव-समाज में जब योग धर्म का आचार और प्रचार लुप्त प्रायः हो जाता है। समाज के श्रेष्ठ पुरुष भी जब भोगासक्त होकर योग के कौशल के सम्बन्ध में ज्ञान-हीन हो जाते है। और योग धर्म के प्रति जब समाज में ग्लानि अथवा भय पैदा हो जाता है, तब-तब मैं अपनी योग-माया का आश्रय लेकर इस भू-मण्डल पर अवतरित होता हूँ। और अवतार लेकर देश, काल पात्र और अवस्था के अनुकूल मैं योग-धर्म के स्वरूप और साधन का प्रचार करता हूँ। क्योंकि हे अर्जुन ! यह "योग" ही समस्त धर्मों का प्राण व सभी धर्म साधनाओं का सार तत्त्व है। योग की प्रतिष्ठा ही धर्म की सच्ची प्रतिष्ठा है। मनुष्य के शरीर, मन और बुद्धि को योगानुरक्त तथा परिस्थितियों के योगानुकूल होने पर ही संसार में धर्म संस्थापन होता है। इस प्रकार शाश्वत धर्म के पूर्ण विग्रह स्वरूप मैं स्वयं ही मानव समाज में योग का प्रवर्तक हूँ। योग दर्शन के अनुसार–

"स पूर्वेषामपि गुरुः कलिनान वच्छेदात्"

अर्थात्–पूर्वोक्त गुण युक्त परमेश्वर पूर्व महर्षियों की भी उपदेष्टा (गुरु) है क्योंकि उसमें काल कृत सीमा नहीं होती।

इस प्रकार पता चलता है कि योग योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ही योग धर्म के आदि आचार्य है, क्योंकि वही प्रत्येक युग में अवतरित होकर अपने आचरण (लीला) उपदेश तथा अनुकूल विधि व्यवस्था के द्वारा योग-धर्म की शिक्षा दिया करते है। तभी तो श्री कृष्ण की वन्दना जगत गुरु के रूप में की गई है यथा "**कृष्णं वन्देजगत गुरु**"। श्री मद्भगवद् गीता में योगेश्वर शब्द तीन बार आया है। योगेश्वर शब्द का अर्थ होता है योगियों का अथवा योग का ईश्वर-मालिक। यथा–

"योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानभव्ययम्।।" (गीता ११-४)

अर्थात्–हे योगेश्वर ! मुझे अपना वह अविनाशी रूप दिखलाइये। और

"योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयं"।।

(गीता १८/७५)

अर्थात्–संजय कहते है–"इस परम गोपनीय योग को अर्जुन के प्रति कहते हुए स्वयं योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण से प्रत्यक्ष सुना है इसके अतिरिक्त अठाहरवें अध्याय के अन्तिम श्लोक में भगवान श्री कृष्ण को योगेश्वर कह करके ही गीता को पूर्ण किया है। यथा–

"यत्र योगेश्वरः कृष्णों यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।"

(गीता-१८/७८)

अर्थात्–हे राजन ! जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण है और जहाँ गाँण्डीव-धनुषधारी अर्जुन है वही पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है–ऐसा मेरा मत है।

तभी तो योगेश्वर श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुखारबिन्द से सबसे श्रेष्ठ योगी का दरजा बताकर अर्जुन को भी योगी बन जाने की स्पष्ट आज्ञा देते है यथा–

"तपस्विभ्योऽधि को योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुनः।।"

(गीता-६/४६)

इस प्रकार पूर्णतया यह बात प्रमाणित हो जाती है कि योगियों के एक मात्र ईश्वर और योग के आदि आचार्य योगेश्वर श्री कृष्ण ही है और योगियों में युक्ततम योगी तथा योगेश्वर नही है। अनादि काल से जो योग परम्परा चली आ रही है उस अव्यय योग के धारक एवं संस्थापक श्री कृष्ण ही है। "योगम ऐश्वरम्" शब्द भी गीता मे दो बार आया है। अध्याय ९ श्लोक ५ में तथा अध्याय १७ श्लोक ८ में भगवान अर्जुन को कहते है कि हे अर्जुन ! तू मेरे योग ऐश्वर्य को देख।" इस प्रकार इस अव्यय योग का धारक व पालक परमात्मा श्री कृष्ण स्वयं ही है। और उनकी शरणागति ही वह अव्यय अविनाशी योग है। इसी योग सूत्र का अवलम्बन करके साधक परम गति को प्राप्त करता है परमात्मा से युक्त होने के लिए महर्षि पांतज्जलि देवजी ने "यमनियम-आसन- प्राणायाम-आदि तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान आदि क्रिया योग साधनों की परिपाटी रक्खी है। इन सब साधनों का एक ही लक्ष्य है कि चित्तवृत्तियों की निरोध विषयों की तरफ से हो जाय और परमात्मा से जुड़ जाय तभी साधक योगी बन सकता है। गीता के छठे अध्याय को यदि पांतञ्जलि योग-दर्शन कहा जाय तो अत्युक्ति नही होगी। यह छठा अध्याय योग सम्पत्ति का खुला हुआ भण्डार है। भगवान श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ योगी के लक्षण बताते हुए कहते है–

"योगिनामपि सर्वेषां मदगते नान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे मुक्ततमो मतः।।"

(गीता-६-४७)

यह सब कहने का तात्पर्य एक मात्रा यही है कि येन केन प्रकारेण अपने आपको उन योगेश्वर भगवान से जोड़ देना है। अनन्य श्रद्धा एकान्तिक प्रेम और तद्गतभाव से ही इस युक्त अवस्था को योगी प्राप्त कर सकता है। अनन्य तद्भाव और शरणागति से योगी इस युक्त अवस्था का अर्थात् ब्रह्म भूत अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

श्री कृष्ण शब्द दिव्य है। कृष्ण शब्द का अर्थ है **"कर्षयति इति कृष्ण"** अर्थात जो अपनी तरफ आकर्षित करे, खींचे उसका नाम कृष्ण है। श्री कृष्ण परम आनन्द स्वरूप है; आनन्द कन्द है। श्री कृष्ण भगवान स्वयं गीता में कहते हैं- **"ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्"** अर्थात्- ब्रह्म का घनीभूत विग्रह यानी मूर्तिमान **"ब्रह्म"** मैं ही हूँ। व्यास देव जी भी श्री कृष्ण की गणना अवतारों में न करके **"कृष्णास्तु भगवान स्वयं"** कहते हैं कि श्री कृष्ण स्वयं भगवान हैं। युग चक्र, काल चक्र, जगत चक्र, तीनों को एक साथ चलाने वाले पूर्ण पुरातन पुरुष श्री कृष्ण हैं। क्लेश, कर्म, विपाक, आशय से रहित श्री कृष्ण ही **'पुरुष विशेषः ईश्वरः** अर्थात् पूर्ण पुरुष हैं; पुरुषोत्तम हैं, ईश्वर हैं। श्री कृष्ण में अपार सर्वज्ञता है, वह गुरुओं के भी गुरु तथा वह काल से परिछिन्न नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान पांतञ्जलि के योग दर्शन के लक्षणों से लच्छित ही श्री कृष्ण पुरुष विशेष ईश्वर हैं। श्री मदभागवत के रचयिता श्री व्यास जी ने स्वयं उन्हें परिपूर्ण ब्रह्म तथा महायोगी कहकर सम्बोधित किया है-यथा

"कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूप ते ब्राह्मणा विदुः।।
त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः।
त्वमेव कालौ भगवान विष्णु र्व्यय ईश्वरः।।
त्व महान प्रकृतिः सूक्ष्मारजः सत्त्वतमोमयी।
त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वश्रेत्र विकार वित।।
गुह्य माणौ स्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः।
कोन्विपर्धते विज्ञातुं प्राक्सिद्धंगुण संवृतः।।

(श्री मद्भागवत)

अर्थात्-सच्चिदानन्द स्वरूप महायोगेश्वर श्री कृष्ण ! आप प्रकृति से परे स्वयं पुरुषोत्तम है। वेदज्ञ ब्राह्मण मानते हैं कि यह व्यक्त-अव्यक्त सारा जगत आपका ही रूप है। आप सभी प्राणियों के शरीर प्राण अन्तः करण और इन्द्रियों के स्वामी हैं। आप सर्वशक्तिमान काल

सर्वव्यापी अविनाशी ईश्वर है। महतत्त्व और प्रकृति है जो सूक्ष्म और सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण रूप है। सारे स्थूल-सूक्ष्म शरीरों के कर्म, भाव, धर्म सत्ता को जानने वाले सबके साक्षी परमेश्वर है। वृत्तियों को ग्रहण करने वाले प्रकृति के विकार-गुण से आप पकड़ में नहीं आ सकते। स्थूल-सूक्ष्म शरीर के आवरण से ढका कौन पुरुष है जो आपको जान सके आप उन शरीर के पहले से ही एकरस विद्यमान हैं।

उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म तीन भावों में प्रकाशमान है-सत्, चित और आनन्द। श्री कृष्ण ने अधर्म झूठ पाखण्ड का विनाश कर मथुरा में धर्म राज्य स्थापित कर (१) अपने सत्‌भाव को। तथा उपदेश देने के बहाने अर्जुन-उद्धवादि भक्तों को ज्ञान का परम तत्त्व सुनाकर (२) अपने चित भाव को और श्री वृन्दावन धाम में लीला में, शान्त, दास्य आदि पाँचों भावों को पूर्ण रूप से प्रकाशित कर भावों मे चरम मधुर भाव की लीला दिखाकर (३) अपने आनन्द-भाव को विकसित किया और इस तरह सच्चिदानन्द की प्रगट लीला एक ही साथ दिखाकर भक्तों के हृदयों को मार्जित और आनन्दित तथा सारे भू-मण्डल को पवित्र और सुशोभित किया। इसके अतिरिक्त भगवान श्रीकृष्ण श्री विग्रह आनन्द का घनीभूतरूप स्वयं ही है। इस संसार के समस्त आनन्दों के मूल आधार दिव्य, शब्द, स्पर्श, गन्ध रूप और रस सभी पूर्ण रूप से इस मदन मोहन की मूर्ति में मूर्तिवान होकर विराजमान है।

गीता-धर्म का शुद्ध स्वरूप योग ही है। भोगानुकूल शक्तियों को पराभूत करके योगानुकूल शक्तियों का अभ्युदय ही धर्म का अभ्युत्थान और अधर्म का पराभव है। अतएव संसार में धर्म की स्थापना के लिए मानव समाज में योगानुरागी भावों को जगाना, योग मार्ग का निर्देश करना योग के स्वरूप का प्रचार करना अपने योग ऐश्वर्य को अपनी लीलाओं द्वारा उद्‌घाटित करना कृष्णावतार के मुख्य कार्य यही है।

भगवान श्रीकृष्ण ने आत्म शक्ति की पूर्णता के लिए ही गीता में योग मार्ग का निर्देश किया है। इस योग मार्ग में सब शक्तियों को एकीभूत करना जीवन के सभी विभागों का एक केन्द्रानुगत करना, एक ही लक्ष्य को सम्मुख रखकर समस्त ज्ञान, समस्त प्रेम तथा समस्त क्रियाओं को नियंत्रित करना इसी का नाम है- योग। अर्थात्- अपने समस्त ज्ञान-प्रवाह को भाव प्रवाह को तथा कर्म प्रवाह को संसार की ओर से गीता में भगवान ने मानवीय आत्मा को सर्वाङ्गीण परिपूर्णता में प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से मानवीय आत्मा को विश्वात्मा के साथ अभेद सम्बन्ध में युक्त करके कृतार्थ करने के उद्देश्य से, एक ही महती योग साधना को त्रिविध मूर्ति के (ज्ञान, भक्ति, कर्म) के रूप में प्रगट करना तथा फिर प्रत्येक मूर्ति को नाना विधि वेषभूषा में भूषित करके अंकित किया गया है। गीता कथित सब साधन, पन्थों का प्राण 'योग' ही है। वेद वादियों के कर्म योग, उपनिषद वादियों के ज्ञान मार्ग तथा साम्प्रदायिक उपासकों के भक्ति मार्ग में प्रगट रूप से विरोध दीख सकता है; परन्तु परम तत्त्वोपदेशक महायोगेश्वर भगवान श्री कृष्ण जब उनमें से प्रत्येक के प्राणगत रहस्य को व्यक्त करते हैं ; उन

सबको योग युक्त करके तत्त्व जिज्ञासुओं की दृष्टि के सामने उसे स्थित करते है। तब सब विरोध विलीन हो जाते है। गीता मे भगवान ने जिस ज्ञान, जिस भक्ति तथा जिस कर्म की शिक्षा दी है वह केवल ज्ञान, केवल भक्ति तथा केवल कर्म ही नही है। बल्कि वह ज्ञान-योग, कर्म-योग तथा भक्ति-योग ही है। ज्ञान योग में ज्ञान की प्राधान्य घोषित होने पर भी कर्म और भक्ति उसके अंगीभुत है, कर्म योग से अनुष्ठान करने के लिए निहित ज्ञान और भक्ति अङ्गाङ्गी भाव से उसके भीतर सम्मिलित है तथा भक्ति योग मे भक्ति सर्वश्रेष्ठ रूप से प्रतिपादित होने पर भी कर्म और ज्ञान की सार्थकता उसके अन्दर अभिव्यक्त है। योग में प्रतिष्ठित होने पर ही, योग युक्त भाव से परिग्रहीत होने पर ही ज्ञान कर्म और भक्ति सम्यक जीवन्त तथा अचित्य शक्ति समन्वित होकर सम्पूर्ण मानवता का परिपूर्ण विकास कर सकते है तथा प्रत्येक पन्थ का दूसरे पन्थ के साथ समन्वय संस्थापित हो सकता है।

गीता मे केवल ज्ञान, कर्म और भक्ति को योग मन्त्र से संजीवित करके उनका समन्वय ही नही किया गया है। बल्कि गीता मे सम्पूर्ण जीवन को ही योग मे परिणित करने की जीवन के छोटे बड़े व्यापार को योग का अंगीभूत करने की शिक्षा प्रदान की है। उदाहरण के लिए आहार-विहार, शयन, उपवेशन, आदान, प्रदान, यज्ञ, तपस्या, भोग, न्याय, विषाद प्रफुल्लता, युद्ध, निग्रह तथा जीवन के जितने भी कार्य है, जितने भी भाव है, सबको योगमय करके चरम-कल्याण साधन के अनुकूल किये गये है। यह योगेश्वर श्री कृष्ण की गीता मे अपूर्व शिक्षा है। महर्षि पांतञ्जलि योग का इसके भीतर ही समावेश पाया जाता है। गीता कथित योग समस्त जीवन का योग है। क्षुद्रतम के साथ बृहत्तम का योग है। चेतन के साथ अचेतन का योग है, व्यष्टि के साथ समष्टि का योग है, पुरुष के साथ पुरुषोत्तम का योग है। प्रत्येक मानव के प्रति भगवान की सारी उपदेश-कथा को गीता की भाषा में एक ही वाक्य मे व्यक्त कर सकते है **''तस्माद्योगी भवार्जुन''** अर्थात्-अर्जुन तुम योगी हो जाओ ! ईश्वर प्राप्ति के उद्देश्य से जीवन में योग की साधना नितान्त आवश्यक है। योग मार्ग ही श्रेय मार्ग है। जीवन मे सब प्रकार के वैचित्रों के अन्दर साम्य की प्रतिष्ठा करना यही गीता का योग है। इसी प्रकार योग की संज्ञा भी दी है यथा-**''समत्वंयोग उच्चते''** समस्त जीवन को योग युक्त करलेने पर जीवन के मूल केन्द्र परमात्मा श्रीकृष्ण से मिलन।

योगेश्वर श्रीकृष्ण अर्जुन को अपने योग ऐश्वर्य को दिखाते हुए कहते है: **''पश्य मे योग मैश्वरम्''**।। अर्जुन ! मेरे योग के ऐश्वर्य को देख कि मै सब कुछ होकर कभी कुछ न होना, सर्वत्र रहकर भी कही न रहना, सबकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण होकर भी निष्क्रिय रहना; नियत परिणाम शील विश्व में अपने को अभिव्यक्त करके भी नित्य, अद्वितीय अपरिणामी शुद्ध, बुद्ध, युक्त सच्चिदानन्द घन स्वरूप में विराजित रहना। सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों के साथ रमण करते हुए भी अच्युत अखण्ड ब्रह्मचारी रहना आदि।

इस प्रकार हम भलीभाँति समझ गये होंगे कि योग के आदि आचार्य योगेश्वर श्री कृष्ण है तथा उनकी गीता पूर्णत: एक योग दर्शन अथवा योगशास्त्र है।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था...............

प्रेम की उपमा एक त्रिकोण से दी जा सकती है, जिसका प्रत्येक कोण प्रेम के एक-एक अविभाज्य गुण का सूचक है। जिस प्रकार बिना तीनों कोणों के त्रिकोण नहीं बन सकता, उसी प्रकार निम्नलिखित तीन गुणों के बिना यथार्थ प्रेम का होना असम्भव है। इस प्रेमरूपी त्रिकोण का पहला कोण तो यह है कि प्रेम में किसी प्रकार का क्रय-विक्रय नहीं होता! जहाँ कहीं किसी बदले की आशा रहती है, वहाँ यथार्थ प्रेम कभी नहीं हो सकता; वह तो एक प्रकार की दूकानदारी सी हो जाती है। जब तक हमारे हृदय में इस प्रकार की थोड़ी सी भी भावना रहती है कि भगवान् की आराधना के बदले में हमें उससे कुछ मिले, तब तक हमारे हृदय में यथार्थ प्रेम का संचार नहीं हो सकता। जो लोग किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं, उन्हें यदि वह चीज न मिले, तो निश्चय ही वे उसकी आराधना करना छोड़ देंगे। भक्त भगवान् से इसलिए प्रेम करता है कि प्रेमास्पद है; सच्चे भक्त के इस दैवी प्रेमी का और कोई हेतु नहीं रहता।

एक बार एक राजा किसी वन में गया। वहाँ उसे एक साधु मिले। साधु से थोड़ी देर बातचीत करके राजा उनकी पवित्रता और ज्ञान पर बड़ा मुग्ध हो गया। राजा ने उनसे प्रार्थना की, ''महाराज, यदि आप मुझसे कोई भेंट ग्रहण करने की कृपा करें, तो धन्य हो जाऊँ।'' पर साधु ने इन्कार कर दिया और कहा, ''इस जंगल के फल मेरे लिए पर्याप्त हैं, पहाड़ों से निकले हुए शुद्ध पानी के झरने पीने को पर्याप्त जल दे देते हैं, वृक्षों की छालें मेरे शरीर को ढकने के लिए काफी हैं और पर्वतों की कन्दराएँ सुन्दर घर का काम देती हैं। मैं तुमसे अथवा अन्य किसी से कोई भेंट क्यों लूँ ?'' राजा ने कहा, ''महाराज, केवल मुझे कृतार्थ करने के लिए कृपया कुछ अवश्य स्वीकार कर लीजिए, और दया कर मेरे साथ चलकर मेरी राजधानी तथा महल को पवित्र कीजिए।'' विशेष आग्रह के बाद साधु ने अन्त में राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसके साथ उसके महल को गये। साधु को भेंट देने के पहले राजा नियमानुसार अपनी दैनिक प्रार्थना करने लगा। उसने कहा, ''हे ईश्वर, मुझे और अधिक सन्तान दो, मेरा धन और भी बढ़े, मेरा राज्य अधिकाधिक फैल जाय, मेरा शरीर स्वस्थ और निरोग रहे,'' आदि आदि। राजा अपनी प्रार्थना समाप्त भी न कर पाया था कि साधु उठ खड़े हुए और चुपके से कमरे के बाहर चल दिये। यह देखकर राजा बड़े असमंजस में पड़ गया और चिल्लाता हुआ साधु के पीछे भागा, ''महाराज, आप कहाँ जा रहे हैं, आपने तो मुझसे कोई भी भेंट ग्रहण नहीं की।'' यह सुनकर वे साधु पीछे घूमकर राजा से बोले, ''अरे भिखारी, मैं भिखारियों से भिक्षा नहीं माँगता। तू तो स्वयं एक भिखारी है, मुझे किस प्रकार भिक्षा दे सकता है ! मैं इतना मूर्ख नहीं कि तुम जैसे भिखारी से कुछ लूँ। जा, भाग जा, मेरे पीछे मत आ।''

विष्णोः परमं पदम्

अनन्ता शक्तयोऽव्यक्ते मायाद्याः संस्थिता ध्रुवाः।
तस्मिन् दिवि स्थितं नित्यमव्यक्तं भाति केवलम् ॥

याभिस्तल्लक्ष्यते भिन्नमाभिन्नं तु स्वभावतः।
एकया मम सायुज्यमनादिनिधनं ध्रुवम् ॥

पुंसोऽभूदन्यया भूतिरन्यया तत्तिरोहितम्।
अनादिमध्यं तिष्ठन्तं युज्यतेऽविद्यया किल ॥

तदेतत् परमं व्यक्तं प्रभामण्डलमण्डितम्।
तदक्षरं परं ज्योतिस्तद् विष्णोः परमं पदम् ॥

तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत्।
तदेव च जगत् कृत्स्नं तद् विज्ञाय विमुच्यते ॥

अर्थात्

अव्यक्त में ही माया आदि अनन्त ध्रुव शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं और वह अव्यक्त अकेले ही विशुद्ध शब्दतन्मात्रारूप आकाश तत्त्व में स्थित रहते हुए सदा प्रकाशित रहता है। स्वभावतः वह अभिन्न (अव्यक्त) तत्त्व जिनके द्वारा अनेक रूपों में प्रतिभासित होता है, उनकी मूल एक (परम) शक्ति से आदि और अन्तरहित मेरा ध्रुव सायुज्य प्राप्त होता है। पुरुष की दूसरी शक्ति से भूति (ऐश्वर्य) की उत्पत्ति तथा अन्य शक्ति से उसका (भूतिका) लोप होता है। आदि एवं मध्यरहित सर्वत्र विद्यमान पुरुष ही अविद्या से (स्वेच्छया) युक्त होता है। प्रभामण्डल से मण्डित वह परम व्यक्त, अक्षर, परम ज्योतिरूप है और वह विष्णु का परम पद है। उसमें ही यह सारा जगत् ओत-प्रोत है। वही सम्पूर्ण जगत् है। उसे जान लेने से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

SIDDHAYOGA Regd. No. L. AG. 008

NOVEMBER 1997

प्रेषण कार्यालय :–

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक
श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र
सराई (एत्मादपुर) आगरा

1470 PRINTED MATTER
Book Post

श्री निर्देश कुमार गुप्ता 2/32

कृष्ण-ध्यान ही दिव्य

योग की दृष्टि से संसार के वैभव का ध्यान राग का कारण है। उसमें राग से वासना और वासना से आसक्ति जन्य बन्धन होता है, किन्तु श्रीकृष्ण के वैभव का ध्यान करने पर राग-द्वेष, वासना या बन्धन नहीं होते। वरन् उनके ध्यान से संसार के वैभवों से वैराग्य हो जाता है। श्रीकृष्ण के वैभवों पर दृष्टि जाती है तो संसार का बड़े-से-बड़ा वैभव अत्यन्त तुच्छ मालूम पड़ता है। यह संसार के वैभव का अभिमान और उसमें राग मिटाने का उपाय है। यह सांसारिक वैभव से वैराग्य कराकर श्रीकृष्ण से राग कराता है, अतएव 'दिव्य' है।

— श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिन्टिंग प्रेस, बसाई काजी, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय प्रकाशन एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सराई, आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326